* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

वर्ष ९६
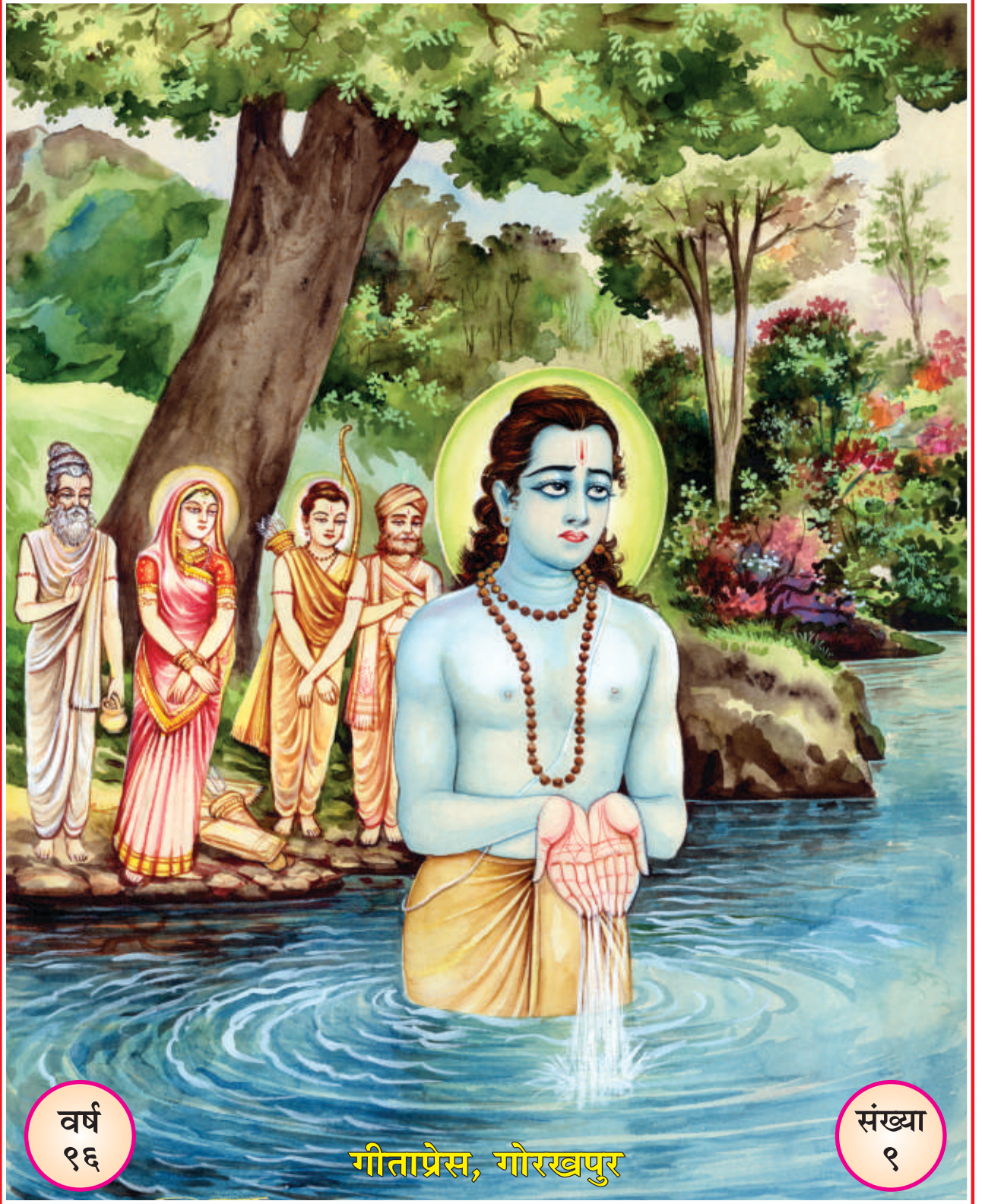
संख्या ९

गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीरामका पिताको जलदान

देवताओंद्वारा सिंहवाहिनी दुर्गाकी स्तुति

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन॥

वर्ष ९६ | गोरखपुर, सौर आश्विन, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, सितम्बर २०२२ ई० | संख्या ९

पूर्ण संख्या ११५०

देवताओंद्वारा सिंहवाहिनी दुर्गाकी स्तुति

नमो देवि विश्वेश्वरि प्राणनाथे सदानन्दरूपे सुरानन्ददे ते।
नमो दानवान्तप्रदे मानवानामनेकार्थदे भक्तिगम्यस्वरूपे॥
न ते नामसंख्यां न ते रूपमीदृक्तथा कोऽपि वेदादिदेवस्वरूपे।
त्वमेवासि सर्वेषु शक्तिस्वरूपा प्रजासृष्टिसंहारकाले सदैव॥
न वा ते गुणानामियत्तां स्वरूपं वयं देवि जानीमहे विश्ववन्द्ये।
कृपापात्रमित्येव मत्वा तथास्मान्भयेभ्यः सदा पाहि पातुं समर्थे॥

हे विश्वेश्वरि! हे प्राणोंकी स्वामिनि! सदा आनन्दरूपमें रहनेवाली तथा देवताओंको आनन्द प्रदान करनेवाली हे देवि! आपको नमस्कार है। दानवोंका अन्त करनेवाली, मनुष्योंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेवाली तथा भक्तिके द्वारा अपने रूपका दर्शन देनेवाली हे देवि! आपको नमस्कार है। हे आदिदेवस्वरूपिणि! आपके नामोंकी निश्चित संख्या तथा आपके इस रूपको कोई भी नहीं जान सकता। सबमें आप ही विराजमान हैं। जीवोंके सृजन और संहारकालमें शक्तिस्वरूपसे सदा आप ही कार्य करती हैं। हे देवि! हे विश्ववन्द्ये! हमलोग न आपके गुणोंकी सीमा जानते हैं और न आपका स्वरूप ही जानते हैं। अतः रक्षा करनेमें समर्थ हे देवि! हमें केवल अपना कृपापात्र मानकर आप भयोंसे निरन्तर हमारी रक्षा करती रहें। [**श्रीमद्देवीभागवत**]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर आश्विन, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, अगस्त २०२२ ई०, वर्ष ९६—अंक ९

विषय-सूची

चित्र-सूची

एकवर्षीय शुल्क
₹ 500
सभी अंक रजिस्ट्रीसे

एकवर्षीय शुल्क
₹ 300
मासिक अंक साधारण डाकसे

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें Air Mail शुल्क — **वार्षिक US$ 50 (₹4,000)**, **पंचवर्षीय US$ 250 (₹20,000)** — **Us Cheque Collection Charges 6 $ Extra**

पंचवर्षीय शुल्क
₹ 2500
सभी अंक रजिस्ट्रीसे

पंचवर्षीय शुल्क
₹ 1500
मासिक अंक साधारण डाकसे

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org**	e-mail : **kalyan@gitapress.org**	✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर निःशुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीमद्भगवद्गीताका प्रसिद्ध श्लोक है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥

इस श्लोकके पहले दो चरणोंमें सिद्धान्तकी बात की गयी है, अगले दो चरणोंमें आदेश है। मात्र कर्म करनेमें तुम्हारा अधिकार है, उसके सफल या विफल होनेमें नहीं—यह तो सिद्धान्तकी बात हुई।

भगवान्‌के आदेशरूपसे करनेकी दो बातें हैं—१. कर्मका परिणाम आते समय स्वयंको उसकी सफलता अथवा विफलताका हेतु न मानो। समझो कि जो हो रहा है, प्रारब्ध या भगवदिच्छा है और २. ऐसा न हो कि इस कारण कर्म करनेके प्रति तुम्हारे उत्साहमें कोई कमी हो जाय।

कर्मयोगका यह रहस्य भगवत्कृपासे हम सबके जीवनमें फलीभूत हो।

—सम्पादक

हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

याद रखो—जबतक किसी वस्तुका मनमें महत्त्व है, जबतक उसकी ओर देखकर मन ललचाता है, जबतक 'किसीके पास वह वस्तु है' इसलिये उसे सौभाग्यवान् तथा ईश्वरका कृपापात्र समझा जाता है, जबतक उस वस्तुका अपने पास न होना अभाग्यका चिह्न माना जाता है, जबतक उसकी आवश्यकताका अनुभव होता रहता है और उसके प्राप्त होनेपर अभाव तथा कष्टका नाश एवं सुख-सुविधाकी प्राप्ति होगी, ऐसी धारणा रहती है, तबतक मनुष्य उसकी कामनासे कभी मुक्त नहीं हो सकता। उसमें निष्कामभाव नहीं आ सकता।

याद रखो—'निष्काम' शब्दके रटनेसे तुम निष्काम नहीं हो सकते। निष्कामभाव मनमें आता है और वह तभी आयेगा, जब तुम जिस वस्तुकी कामना करते हो, उस वस्तुमें तुम्हारी दुःख-दोष-बुद्धि, मलिन-बुद्धि, 'वह तुम्हारे लिये हानिकारक है, तुम्हारे यथार्थ सुख-सुविधामें बाधक है'—ऐसी बुद्धि और उसमें असत्-बुद्धि वस्तुतः हो जायगी।

याद रखो—मलको उठाकर कोई शरीरपर लेपना नहीं चाहता, उलटीको कोई मनुष्य चाटना नहीं चाहता, विषको कोई खाना नहीं चाहता, दुःखको कोई सिर चढ़ाकर स्वीकार नहीं करता, रोगसे कोई प्रीति नहीं करना चाहता। इसी प्रकार जब इस लोक और परलोकके तमाम भोग-पदार्थोंमें, स्थितियों और अवस्थाओंमें तुम्हारी मल-बुद्धि, वमन-बुद्धि, विष-बुद्धि, दुःख-बुद्धि और रोग-बुद्धि हो जायगी, वे सब इसी प्रकारके दिखायी देंगे, तब उनसे तुम्हारा मन आप ही हट जायगा। फिर उनमें न आसक्ति रहेगी, न मोह ही रहेगा। फिर उन्हें अपनाना, अपना बनाना, उनपर अपनी ममताकी मुहर लगाना, उनके न होनेपर छटपटाना, चले जानेपर शोक करना, चले जानेकी आशंकासे ही व्याकुल हो जाना, उनको प्राप्त करनेकी कामना या इच्छा होना—आदि बातें नहीं रहेंगी। कामनाका त्याग मनसे हुआ करता है, वाणीसे नहीं। सत्यकी कल्याणमयी सुन्दर प्रतिष्ठा मनमें ही हुआ करती है। अतएव तुम यदि जीवनमें निष्कामभाव लाना चाहते हो तो काम्य-वस्तुओंमें अनित्यता, मलिनता, दुःखरूपता और विनाशिताको देखो। भगवान्‌के बिना जितने भी भोग हैं—सब दुःख हैं, भयानक दुःखोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं—यह अनुभव करो। फिर उनकी ओर मनका प्रवाह अपने-आप ही रुक जायगा।

याद रखो—तुम्हारे मनका जो यह विश्वास है, तुम्हारी बुद्धिका जो यह निश्चय है कि भोगोंमें सुख है—चाहे यह विश्वास और यह निश्चय वाणीसे फूट न निकलता हो, पर तुम्हें भोगोंमें लगाये बिना नहीं रह सकता। तुम हजार निष्काम-शब्दकी रटना करो, निष्कामके महत्त्वका गुणगान करो। तुम सुखके लिये भोगोंका होना अनिवार्य समझोगे। तुम्हारा अन्तर्हृदय भोगोंके लिये छटपटाता रहेगा। तुम ऊपरसे चाहे जितना भी हँसो—तुम्हारा अन्तर भोगोंके अभावमें रोता-कलपता रहेगा। यही तो भोगकामना है। इसके रहते तुम निष्काम कैसे बनोगे?

याद रखो—भोग-पदार्थोंमें सुख-बुद्धि, आवश्यक-बुद्धि, आदर-बुद्धि, जबतक रहेगी, तबतक भोगोंके प्रति, जिनके पास भोग-पदार्थ अधिक हैं, उनके प्रति तथा जिन साधनोंसे भोग-पदार्थोंकी प्राप्ति सुगम समझी जाती है, उन साधनोंके प्रति तुम्हारे मनमें सम्मान और प्रीतिका भाव होगा ही। तुम स्वयं उस सम्मान तथा प्रेमको प्राप्त करना चाहोगे और उसीमें अपना गौरव तथा सौभाग्य समझोगे। जिनके पास भोग-पदार्थ नहीं हैं या अपेक्षाकृत कम हैं, उन्हें तुम अभागा समझोगे, उनके प्रति सम्मान और प्रेमका भाव तुम्हारे मनमें तथा व्यवहारमें नहीं होगा। तुम उनकी उपेक्षा करोगे। इसलिये तुम स्वयं भी इस अभाग्य, इस सम्मान तथा प्रेमके अभाव और लोगोंकी उपेक्षासे डरोगे। ऐसा होनेमें अपना दुर्भाग्य मानकर ऐसी स्थितिसे सर्वथा दूर रहना चाहोगे, जबतक इस प्रकारकी मनोवृत्ति रहेगी, तबतक कामनाके कठिन

चंगुलसे तुम नहीं छूट सकोगे।

याद रखो—भोगसहित और भोगरहित सभी अवस्थाओंमें सर्वत्र भगवान् हैं; इसलिये आदर सबका करो, सम्मान सबका करो, पर करो भगवान् समझकर, भोग समझकर नहीं। भोग समझकर करोगे तो भोगरहितमें तुम्हारी आदर या सम्मान-बुद्धि नहीं रहेगी। मनसे भोगोंके आदरका बहिष्कार कर दो—निकाल दो और वह तभी निकलेगा, जब भोगोंमें सुख-बुद्धि और आवश्यक-बुद्धिका सर्वथा अभाव हो जायगा। तब उनके अभावके जीवनमें एक भारमुक्त स्थितिकी, एक बड़े आश्वासनकी, एक अभूतपूर्व सुखकी और विलक्षण शान्तिकी अनुभूति होगी।

याद रखो—सुख-शान्ति वस्तुओंमें नहीं है, वह मनकी निष्काम-स्थितिमें ही है। जब तुम्हारा मन कामना और स्पृहासे रहित हो जायगा, जब तुम्हारी ममताकी बेड़ी कट जायगी एवं जब तुम्हारा अहंकार भगवान्के दिव्य चरणकमल-युगलमें समर्पित होकर धन्य हो जायगा, तभी तुम सच्ची शान्ति पा सकोगे और तभी तुम्हें यथार्थ सुखका शुभ साक्षात्कार होगा। **'शिव'**

व्रज-विभूति

[परम संत श्रीगयाप्रसादजी महाराजके सदुपदेश]

१. श्रीप्राणनाथकी कृपाको स्मरण बारंबार करतो रहे।
२. इनको पूर्ण आश्रय राखे।
३. सदैव प्रसन्न शान्त रहे।
४. काहूको बुरो न चाहै।
५. काहूकी निन्दा न करे।
६. क्रोध न करे।
७. सबको सम्मान करे, काहू कौ अपमान न करै।
८. भजन करिबे कौ नियम राखै नित्यकौ नियम नित्य ही पूरो कर लेय।
९. मेरौ यह जन्म भजन करिबे के ताईं ही भयो है, ऐसो दृढ़ विचार राखे।
१०. जहाँ ताईं है सकै, अपने भजन-साधन तथा अपने अनुभव कूँ गुप्त ही राखै।
११. समय कूँ व्यर्थ न खोवे।
१२. शरीरकी स्वस्थतापर ध्यान राखै।
१३. श्रीप्राणनाथमें प्रेम होइवेकी इच्छा राखे।
१४. सबसौं प्रेम करनौं किंतु काहू सौं आसक्त न होय।
१५. अभ्यास बढ़ानौ कि निरंतर श्रीराम-जप होतौ रहै।
१६. एक ही इच्छा बढ़ती जाय कि श्रीराम-जपमें पूर्ण रुचि है जाय।
१७. कहो कम, सुनो कम, करो अधिक।
१८. भजनमें बाधा परै वाकूँ सहनौं महापाप है।
१९. यही विचार रहे कि श्रीनाम-जप कैसे बने।
२०. जीभकौ एक ही मुख्य काम श्रीनाम रटे।
२१. काननकौ एक ही मुख्य काम श्रीनाम-श्रवण।
२२. मन कौ एक ही काम श्रीनाम-जपमें पूर्ण आनन्द लेनौ।
२३. समस्त पुण्यन कौ एक ही फल कि श्रीनाम भगवान्में पूर्ण निष्कामता होय।
२४. जीवनकी सफलता केवल श्रीनाम-जपकी लगनमें।
२५. भजनकौ मुख्य फल भजन।
२६. भजन सौं कबहू तृप्त न होय।
२७. सौभाग्य एक, भजन ही सोहाय।
२८. दुर्भाग्य भजन छोड़िकै अन्य काममें लगनौ।
२९. भजन ही साधन, भजन ही साध्य।
३०. श्रीप्राणनाथकी कृपाको यही परिचय कि श्रीनाम कौ पूर्ण आश्रय है जाय।
३१. भजन करते-करते जीवै। श्रीनाम रटते-रटते ही मरै।
३२. नाम-नामीमें अभेद-भाव राखे।

आवरणचित्र-परिचय—

श्रीरामका पिताको जलदान

श्रीराम-वनवासके बाद महाराज दशरथने उनके वियोगमें अपना प्राण त्याग दिया। गुरुकी आज्ञासे ननिहालसे वापस लौटकर भरतजीने पिताका अन्तिम संस्कार तो विधिवत् सम्पन्न किया, परंतु गुरुदेव वसिष्ठके आदेश और माता कौसल्याके अनुरोधपर भी उन्होंने राजसिंहासनपर बैठना स्वीकार नहीं किया। सबको साथ लेकर वे श्रीरामको मनानेके लिये पैदल ही चित्रकूट चल दिये। चित्रकूटमें श्रीरामका दर्शनकर वे उनके चरणोंमें गिर पड़े।

जटा और चीर धारण किये भरतको हाथ जोड़कर पृथ्वीपर पड़े देखकर श्रीरामने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया। इसके बाद उन्हें गोदमें बिठाकर श्रीरामने बड़े आदरसे पूछा—'तात! पिताजी कहाँ हैं, जो आज तुम इस वनमें आये हो। उनके जीतेजी तो तुम वनमें नहीं आ सकते थे। महाराज जीवित हैं न? कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि वे अत्यन्त दुखी होकर सहसा परलोकवासी हो गये हों और इसलिये तुम्हें स्वयं यहाँ आना पड़ा हो? हे सौम्य! तुम किस कारणसे राज्य छोड़कर वल्कल, कृष्णमृगचर्म और जटा धारणकर इस देशमें आये हो?'

श्रीरामके इस प्रकारके पूछनेपर भरतने हाथ जोड़कर कहा—'आर्य! मेरी माता कैकेयीकी प्रेरणासे पिताजीने आपको वनवास देने-जैसा कठोर कार्य कर डाला, परंतु फिर वे पुत्रशोकसे पीड़ित हो हम लोगोंको छोड़कर स्वर्ग सिधार गये।' ऐसा कहते हुए भरत नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए पुनः श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें गिर गये।

भरतकी बातोंसे पिताकी मृत्युका समाचार जानकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा दुःख हुआ, वे अचेत-से होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। फिर होशमें आनेपर वे नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे और भरतसे धर्मयुक्त वचन बोले—'हाय! पिताजी मेरे ही शोकसे मृत्युको प्राप्त हुए और मैं उनका दाह-संस्कार भी न कर सका। भरत! तुम्हीं कृतार्थ हो—तुम्हारा ही जीवन सफल है; क्योंकि तुमने और शत्रुघ्नने महाराजके प्रत्येक पारलौकिक कृत्यमें सम्मिलित होकर उनका पूर्ण सत्कार किया है। अब तो मुझे वनवासकी अवधि समाप्त हो जानेके बाद भी अयोध्यामें चलनेका उत्साह नहीं होता। पिताके परलोकवासी हो जानेपर अब कौन मुझे वहाँ शिक्षा देगा? पहले जब मैं उनकी किसी आज्ञाका पालन करता था, तो वे मेरे सद्व्यवहारको देखकर मेरा उत्साह बढ़ानेके लिये कई बातें सुनाया करते थे। वे कानोंको सुख पहुँचानेवाली बातें अब मुझे कहाँ सुननेको मिलेंगी?' भरतसे ऐसा कहकर शोकसन्तप्त श्रीरामने अपनी पत्नीके पास आकर कहा—'सीते! तुम्हारे श्वशुर चल बसे। लक्ष्मण! तुम पितृहीन हो गये! भरत पिताजीके स्वर्गवासका दुखदायी समाचार सुना रहे हैं।' अपने श्वशुर महाराज दशरथकी मृत्यु सुनकर सीताकी दोनों आँखोंमें आँसू भर आये। वे अपने प्रियतम श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देख न सकीं। तदनन्तर रोती हुई जनककुमारीको समझा-बुझाकर शोकमग्न श्रीरामने अत्यन्त दुखी हुए लक्ष्मणसे कहा—'भाई! तुम इंगुदीका पिसा हुआ फल और चीर एवं उत्तरीय ले आओ। मैं महात्मा पिताको जल देने जाऊँगा। सीता आगे-आगे चलें, इनके पीछे तुम चलो और तुम्हारे पीछे मैं चलूँगा। शोकके समयकी यही परिपाटी है, जो अत्यन्त दारुण होती है।'

तत्पश्चात् महामति सुमन्त्र, जो राजकुलके परम्परागत सेवक, आत्मज्ञानी और श्रीरामके अत्यन्त भक्त थे, सब राजकुमारोंके साथ श्रीरामको धैर्य बँधाकर उन्हें हाथका सहारा दे कल्याणमयी मन्दाकिनीके तटपर ले गये। वहाँ एक उत्तम घाटपर जाकर उन सबने महाराजको जलांजलि दी। श्रीरामचन्द्रजीने दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके अंजलिमें जल भरकर रोते हुए कहा—'पूज्य पिताजी! मेरा दिया हुआ यह निर्मल जल आपकी दिवंगत आत्माको अक्षयरूपसे प्राप्त हो।' तदनन्तर मन्दाकिनीके जलसे किनारेपर आकर श्रीरामने अपने भाइयोंके साथ पिताका पिण्डदान किया। उन्होंने इंगुदीके गूदेमें बेर मिलाकर उसका पिण्ड तैयार किया और बिछे हुए कुशोंपर उसे रखकर अत्यन्त दुखी हो रोते हुए कहा—'महाराज! प्रसन्नतापूर्वक इसे स्वीकार कीजिये; क्योंकि आजकल यही हमलोगोंका भोजन है। मनुष्य स्वयं जो अन्न खाता है, वही उसके देवता भी ग्रहण करते हैं।' **[वाल्मीकीय रामायण]**

मरणासन्नको भगवन्नाम सुनाना अति महत्त्वपूर्ण

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मरणासन्न मनुष्यका मल-मूत्र साफ करना बड़ी सेवा है। पर वह तो दूर, मरणासन्न व्यक्तिको भगवान्‌का नाम और कीर्तन सुनाना भी मुश्किल हो रहा है। भगवान्‌ने कहा है—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(गीता ८। ५)

जो पुरुष अन्तकालमें मेरेको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

इस श्लोकमें भगवान्‌ने कह दिया कि मेरा ही स्मरण करता हुआ शरीरको छोड़कर जाता है उसकी मुक्तिमें कोई शंकाकी बात नहीं। इसमें कोई शंका करे तो क्या कहें?

यहाँ चार सौ व्यक्तियोंको सत्संग सुनानेकी अपेक्षा मरणासन्न व्यक्तिको भगवन्नाम सुनाना अधिक अच्छा है; क्योंकि यदि एक व्यक्तिका भी भगवन्नाम सुनानेसे कल्याण हो गया तो मेरा तो काम बन गया। ज्ञानकी दृष्टिसे सभी आत्मा हैं, किसी भी शरीरकी आत्माका कल्याण हुआ तो अपना ही कल्याण हुआ; क्योंकि वह अपना ही आत्मा है।

एक भाई रात-दिन इस तरह मरणासन्न व्यक्तिको भगवन्नाम नहीं सुना सकता, न मालूम किसके सुनानेकी पारीमें वैसा अच्छा मौका आवे। भगवन्नाम सुनानेमें अपना भजन होता है और दूसरेको भी सुननेको मिलता है। कोई बीमार है, कोई मर रहा है, उसकी सेवा करना बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। उसको भगवन्नाम तथा गीताजी सुनाना बड़ा कल्याणकारी है।

मरणासन्न व्यक्तिको गीता-पाठ, राम-नाम, नारायणका नाम सुना रहे हैं, सुनते-सुनते वह मर गया, उसको तो भगवान्‌की प्राप्ति हो गयी, सुनानेवालेको क्या मिला? भगवान् कहते हैं—'हे अर्जुन! जो गीताको मेरे भक्तोंको सुनाये, वह मेरी भक्तिके द्वारा मुझे प्राप्त हो जायगा। इस प्रकार करनेवाला मुझे बहुत प्यारा है, ऐसा प्यारा न कोई दूसरा हुआ है, न होगा, यह भगवान्‌का वाक्य है।

एक व्यक्ति पचास वर्षोंसे साधन कर रहा है, उसका यदि हमारे द्वारा नाम सुनानेसे कल्याण होता है, तो अपना तो कल्याण हो ही गया, नाम सुनानेका फल मिल गया।

हमारा मनुष्य-जन्म कल्याणके लिये है। यदि अपना कल्याण नहीं हुआ और हमारे द्वारा दूसरेका कल्याण हो गया तो हमारा कल्याण हो ही गया। जो स्वयं उपवास करके दूसरेको भोजन कराता है, वह स्वयं भोजन करनेसे भी बढ़कर है। हमारे द्वारा हजारों वैकुण्ठ जाते हैं, स्वयं नरकमें जायें तो उससे भी बढ़कर है, वहाँ जाकर नरकके जीवोंका कल्याण करें। ऐसा करनेसे उनको भगवान्‌की पदवी मिलेगी; क्योंकि भगवान्‌का काम है जीवोंका उद्धार करना, वह जीवोंका उद्धार करता है तो भगवान् है। मरणासन्न व्यक्तिको नाम सुनानेकी ऐसी महिमा है। मरणासन्न व्यक्तिका पाँच मिनट भगवन्नाम सुनानेसे जो लाभ होता है, वह साधन करनेसे बीस वर्षमें भी नहीं होता।

इसपर विचार करनेसे यही बात आती है कि सब काम छोड़कर यह काम करना बड़ा ही उत्तम है, भजन-सत्संगसे भी बढ़कर है। सबसे बढ़कर है, मुक्तिसे भी बढ़कर है। इसकी महिमा बहुत अधिक है। मरनेवाले व्यक्तिके पास भगवान्‌का नाम, गीता सुनाना और वह सुनते हुए मर गया तो उसका कल्याण है ही, अपना भी कल्याण है। यह काम सबसे बढ़कर है, लोभी आदमीकी तरह ऐसे अवसरकी खोज करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। मरणासन्न व्यक्तिको भगवान्‌का नाम, गीता सुनाना यह काम सबसे महत्त्वपूर्ण समझकर करना चाहिये।

नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण···

हमारे आन्तरिक शत्रु—

उत्तेजनाके क्षणोंमें

[क्रोध—कारण और निवारण]

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

यह क्रोध आता कहाँसे है? इसका उद्‌गम कहाँ है? 'गीताप्रवचन'में सन्त विनोबाने इसकी सुन्दर व्याख्या की है—

'पानी ऊपरसे साफ दीखता है; परंतु उसमें पत्थर डालिये, तुरन्त ही अन्दरकी गन्दगी ऊपर तैर आयेगी। वैसी ही दशा हमारे मनकी है। मनके अन्त:सरोवरमें नीचे घुटनेभर गन्दगी जमा रहती है। बाहरी वस्तुसे उसका स्पर्श होते ही वह दिखायी देने लगती है। हम कहते हैं, उसे गुस्सा आ गया। तो यह गुस्सा कहीं बाहरसे आ गया? यह तो अन्दर ही था! मनमें यदि न होता तो वह बाहर दिखायी ही न देता!'

× × ×

वस्तुत: काम-क्रोध आदि विकार तो हमने मनके भीतर सँजो-सँजोकर रख छोड़े हैं। उनके संस्कार मनमें ठसाठस भरे पड़े हैं। वे प्रकट होनेके लिये कुलबुलाया करते हैं। मौका मिला और वे हाजिर! प्रसंग उपस्थित हुआ नहीं कि उन्हें हाजिर होते देर नहीं लगती!

× × ×

बच्चोंको हम कागजों, पत्थरों, चूड़ियोंके टुकड़े, सलाईके खाली डिब्बे, फटे-पुराने चित्र आदि सँजोते देखकर उनके परिग्रहकी आदतपर हँसते हैं, परंतु हम जो मनमें दुनियाभरके फालतू विचार, गन्दे संस्कार, दुर्भावनाएँ, अनावश्यक स्मृतियाँ सँजोया करते हैं, उनपर कभी हमें हँसी आती है? कैसी नादानी है हमारी यह!

× × ×

बच्चोंके खजानेकी एक कौड़ी भी कोई छीन ले फिर देखिये उनका रोना-चिल्लाना, बिलखना और पैर पटकना। परंतु हमारा क्रोध उनसे किसी अंशमें कम नहीं! रुपया-पैसा, धन-दौलत, जमीन-मकान, स्त्री-पुत्र आदि हमारे खिलौने कोई छीन ले, उन्हें तोड़-फोड़ दे, किसी प्रकार नष्ट कर दे, हमारे विचारोंको, हमारे संस्कारोंको, हमारी वासनाओंको जरा-सा ठुकरा दे, हलकी-सी भी ठेस मार दे, फिर देखिये हमारा ताव!

नादानीमें हम बच्चोंसे किसी कदर कम नहीं!

वाये नादानी कि वक्ते-मर्ग यह साबित हुआ,
ख्वाब था जो कुछ कि देखा जो सुना अफसाना था।

× × ×

इस नादानीको मिटाये बिना काम-क्रोधसे छुटकारा मिलना असम्भव है। **'सत्यधर्माय दृष्टये'** हमें हिरण्यमय ढक्कनको उठाना ही होगा। मनके अन्त:सरोवरमें हमने जो गन्दगी भर रखी है, उसे निकाले बिना काम चलनेवाला नहीं। मनोमलको नष्ट किये बिना न तो हम शान्ति प्राप्त कर सकते हैं, न आनन्द। जीवनके परम लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये हमें इन विकारोंसे अपनेको मुक्त करना ही होगा।

× × ×

उस दिन अकस्मात् श······ने मुझसे पूछ ही तो दिया—'अच्छा बताइये तो क्रोधसे कैसे छुटकारा पाया जाय?'

मेरे पास इस प्रश्नका उत्तर ही क्या है? क्रोधसे मैंने छुटकारा पा लिया होता तो मैं इस प्रश्नका उत्तर देनेका अधिकारी हो सकता था। परंतु अपनी हालत तो मैं पहले ही बता चुका हूँ। यहाँ तो अभी 'दिल्ली दूर अस्त'! फिर भी—

पानी मिलै न आपको औरन बकसत छीर।
आपन मन निश्चल नहीं और बँधावत धीर॥

× × ×

डॉक्टरका बेटा बिना डॉक्टरी पढ़े घाव चीरने नहीं बैठता। वकालत पढ़े बिना वकीलका बेटा वकालत करने नहीं जाता। परंतु हमारे लिये ये बातें लागू नहीं होतीं। अमल भले ही न करें, परंतु उपदेश देनेको तो हम अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते ही हैं। इसी हैसियतसे मैंने श······को समझानेकी चेष्टा की।

× × ×

श······एक कम्पनीमें काम करते हैं। वहाँ दुर्व्यवस्था तथा कुछ ऐसे ही अन्य कारणोंसे कर्मचारियोंको समयसे पैसा नहीं मिलता। दो-दो, तीन-तीन मासकी देर हो जाना नियम-सा बन गया है। समयपर पैसा न मिलनेपर

और उसके अभावमें कष्ट होनेपर चित्तका क्षुब्ध होना स्वाभाविक है। श······गये थे मैनेजरसे पैसा माँगने। न मिलनेपर उनका क्रुद्ध हो उठना अस्वाभाविक नहीं था।

जल्दी ही गरमागरमी आ गयी बातचीतमें।

पैसा भी नहीं मिला, पश्चात्ताप भी हुआ। ***'दोऊ दीनसे गये पाँड़े, हलुआ मिला न माँड़े!'***

उनसे भेंट हुई तो उनकी ज़बानपर यही प्रश्न था कि इस क्रोधको कैसे रोका जाय?

× × ×

मैंने कहा—क्रोधको रोकनेके उपाय तो कितने ही बताये गये हैं। कुछ तात्कालिक हैं, कुछ स्थायी। जैसे—

(१) गालीका जवाब गालीसे मत दो।

(२) मौन हो जाओ।

(३) मैदान छोड़ दो।

(४) राम-राम जपने लगो।

(५) 'ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः'का जप करने लगो।

(६) शीतल जलसे स्नान कर लो।

(७) प्रसंग बदल दो।

(८) क्रोधके पात्रसे क्षमा माँग लो।

ये हुए तात्कालिक उपाय, क्रोधको स्थायी रूपसे शान्त करनेके लिये कुछ अन्य उपाय हैं—

(९) मालिककी मर्जीको अपनी मर्जी बना लो। उनके मंगलविधानको मंगलमय मान लो।

(१०) वाणीके संयमका अभ्यास करो।

(११) सात्त्विक जीवन अपनाओ।

(१२) सोचो कि क्रोधसे बिगड़ा काम बिगड़ेगा ही, सुधरेगा नहीं।

(१३) क्षमा-धारणका अभ्यास करो।

(१४) घट-घटमें ब्रह्मके दर्शन करो।

(१५) शान्तिको न फिसलने देनेका निश्चय करो।

× × ×

गीता (३। ३७)-में कहा गया है—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

'रजोगुणसे पैदा होनेवाला यह काम ही क्रोध है। बड़ा पेटू है यह। कभी इसका पेट भरता ही नहीं। यह बड़ा पापी है। इसे ही तू अपना शत्रु समझ।'

गाँधीजी कहते हैं—'हमारा वास्तविक शत्रु अन्तरमें रहनेवाला चाहे काम कहिये, चाहे क्रोध—यही है।'

इसीको जीतनेकी जरूरत है।

पर यह है बहुत कठिन। बड़े अभ्याससे इसपर विजय प्राप्त की जा सकती है। बड़ी साधना करनी पड़ती है इसके लिये। तभी न कहा गया है—

जग जीतनेसे बढ़कर है इन्द्रियोंको जीत लेना!

× × ×

जिस व्यक्तिने विकारोंपर विजय प्राप्त कर ली, विषयोंको जीत लिया, उससे बढ़कर और कौन हो सकता है?

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥

(गीता ५। २३)

शरीर छूटनेसे पहले जो व्यक्ति काम और क्रोधके वेगको सहन करनेमें समर्थ हो जाता है, वही तो योगी है, वही तो सुखी है, जिन्दा होते तो मुर्दा बन जाता है, काम-क्रोध आदि विकार जिसे विचलित नहीं कर पाते, वही पुरुष तो सच्चा सुखी है। मानव-जीवनकी सार्थकता तो इसीमें है। शव बने बिना शिवकी प्राप्ति हो ही कैसे सकती है?

× × ×

गीता कहती है—'**कामात्क्रोधोऽभिजायते!**'

कामसे क्रोधकी उत्पत्ति होती है।

सो कैसे?

शंकराचार्य कहते हैं—

'कामात् कुतश्चित् प्रतिहतात् क्रोधः अभिजायते।'

कामके प्रतिहत होनेपर उसमेंसे क्रोध पैदा होता है।

'बुझै न काम अगिनि 'तुलसी' कहुँ विषय भोग बहु घीते!'

कामनाओंका कभी अन्त होनेवाला है?

जहाँ उनकी पूर्तिमें बाधा पड़ी कि क्रोध आया!

× × ×

एकनाथ कहते हैं—'काम या तो पूरा होगा या अधूरा रहेगा। अधूरा रहा तो क्रोध पैदा होगा, पूरा हो गया तो लोभको जन्म देगा। अतः 'क्रोध' शब्दका अर्थ क्रोध और लोभ मिलाकर व्यापक करना चाहिये।'

× × ×

विनोबा 'स्थितप्रज्ञदर्शन'में कहते हैं—'क्रुध' धातुका मूल अर्थ तौलनिक भाषाशास्त्रके अनुसार क्षोभ, खलबली

है। इसके समानार्थक 'कुप' धातुका तो 'क्षोभ' के अर्थमें संस्कृतमें प्राय: सदा ही प्रयोग होता है। क्रोधका स्थूल एवं हमारा परिचित अर्थ है गुस्सा—सन्ताप। यहाँ अभीष्ट है चित्तका चलन अथवा क्षोभ।

'कामके उत्पन्न होते ही मनकी स्थिरता डिगने लगती है। मनमें अप्रसन्नता उत्पन्न होती है। कामकी पूर्ति हो या न हो, उसके उत्पन्न होते ही चित्तकी समता चली जाती है।'

'काम कहते हैं मनकी इस छटपटाहटको कि मुझे अमुक चीज चाहिये। और, यही अप्रसन्नता है। जबतक वह विषय प्राप्त नहीं होता तबतक मैं पूर्ण नहीं हूँ। उसके बगैर मुझमें कमी है। यही कारण है जो कामनासे मन मलिन होता है।'

'संस्कृतमें साफ पानीको 'प्रसन्नं जलम्' कहते हैं। प्रसन्नताका अर्थ है निर्मलता और पारदर्शकता। मल होता है पानीके बाहरकी वस्तु। उसका रंग जहाँ पानीपर चढ़ा कि वह मटमैला हुआ।'

'आत्मा जब अपने मूलस्वरूपमें रहता है तो प्रसन्न रहता है। उसे बाहरी वस्तुकी इच्छा होना, उसका रंग उसपर चढ़ने लगना उसका मैलापन है। यही अप्रसन्नता है। बाह्य कामना जहाँ आयी कि मिलावट हुई। तब कामनाके सामने आत्मा गौण हो जाता है, फीका पड़ जाता है। उसका मन चलित होने लगता है, अशान्ति, व्याकुलता मालूम होने लगती है, क्षोभ होता है। इसीको यहाँ 'क्रोध' कहा गया है।'

× × ×

कामनासे चित्तक्षोभ क्यों होता है, इसकी व्याख्या करते हुए विनोबाजी कहते हैं—

'आत्माके परिपूर्ण और अनन्त गुणी होते हुए भी मनुष्य बाह्य वस्तुके लिये क्यों छटपटाता है? बाहरकी इष्टप्राप्ति और अनिष्ट-परिहारके झंझटमें क्यों पड़ता है? इसका कारण यह है कि मनुष्यके चित्तको आत्माका दर्शन नहीं होता। केवल बहिर्दर्शन होता है। बाहरी सृष्टिका सौन्दर्य उसे लुभाता है। असौन्दर्य त्रास देता है। वस्तुत: सौन्दर्य अथवा असौन्दर्य बाह्य वस्तुमें नहीं है। वहाँ तो आकारमात्र है। तद्विषयक अनुकूल-प्रतिकूल वृत्ति मुख्यत: चित्तकी करनी है।'

'चित्त इन्द्रियाधीन है। सृष्टि ईश्वरकी बनायी हुई है, परंतु उसके सम्बन्धमें जो कल्पना है, ख्याल है, वह मेरा है। अर्थात् मेरे इन्द्रियाधीन चित्तका है। इस तरह मैं सृष्टिके भिन्न-भिन्न पदार्थोंके विषयमें अनुकूल या प्रतिकूल वृत्ति बनाता हूँ। वह क्षोभका कारण होती है। बाह्य वस्तुकी अभिलाषा करते रहनेसे आत्मा न्यूनताको प्राप्त होता है और इससे चित्त क्षुब्ध होता है। चित्तकी इस क्षुब्धताको ही यहाँ 'क्रोध' कहा है।'

× × ×

चित्तमें कामनाका उदय हुआ नहीं कि क्षोभ आया। क्षोभ आते ही चित्त आत्माका आश्रय छोड़कर जगत्के प्राणी-पदार्थोंके लिये छटपटाने लगता है। यह छटपटाहट, यह आकुलता ही क्रोधकी जननी है। इसीसे बुद्धि अपने स्थानसे चलित हो जाती है। उसका सन्तुलन जाता रहता है। मनुष्य ऊटपटांग बकने लगता है, ऊल-जलूल काम करने लगता है। इसीका नाम क्रोध है। इसीको गुस्सा कहा जाता है। इसीका नाम अप्रसन्नता है।

× × ×

क्रोधके प्रसंग हमारे जीवनमें हजारों बार उपस्थित होते हैं। हमारे आराममें बाधा पड़ती है, हमें क्रोध आ जाता है। हमारे स्वार्थमें व्याघात होता है, हमें क्रोध आ जाता है। हमारी इच्छा और रुचिके विपरीत कुछ होता है, हमें क्रोध आ जाता है। हमारा कोई काम बिगड़ता है, कोई चीज खराब हो जाती है, हमें क्रोध आ जाता है।

हमारे अहंकारको ठेस लगती है, हमारी शान किरकिरी होती है, हमें क्रोध आ जाता है।

× × ×

हमारे हृदयमें कामना है—आरामकी, सुखोपभोगकी। हम चाहते हैं कि सारी दुनिया उसी ढंगसे घूमे जिस ढंगसे हम घुमाना चाहें। हम चाहते हैं कि हमारी ही शान रहे, हमारी ही तूती बोले, सभी लोग हमसे दबकर रहें, हमें ही सब लोग महत्त्व दें, हमें ही ऊँचा मानें। इन सब इच्छाओंके विपरीत कुछ हुआ कि हमें क्रोध आया!

× × ×

क्रोधसे छुटकारा पानेके लिये हमें इन सभी इच्छाओंपर काबू करना पड़ेगा। उसके लिये हमें स्वार्थ-त्याग करना होगा, कष्टोंको बिना ननु-नच किये स्वीकार करना होगा, हानि चाहे जैसी हो जाय, चेहरेपर

शिकन भी नहीं लानी होगी, अहंकारको धो बहाना होगा, नम्रता धारण करनी पड़ेगी और निरन्तर क्षमाका अभ्यास करना होगा।

× × ×

श······से मैंने कहा—आप पैसा माँगने गये थे। पैसा आपको नहीं मिला। आपके स्वार्थमें बाधा आयी। आपके सुखोपभोगमें अड़चन उपस्थित हो गयी। आपको क्रोध आ गया।

आप चाहते हैं कि आपको क्रोध न आये तो आपके चिन्तनकी धारा कुछ इस प्रकारकी होनी चाहिये—

क्रोध करनेसे क्या लाभ है?

(१) सम्भव है गरमागरमी करनेसे आपको पैसा मिल जाय।

(२) सम्भव है गरम पड़नेपर भी आपको पैसा न मिले।

× × ×

अब पहली सम्भावनापर विचार कीजिये।

मैनेजरने किसी प्रकार व्यवस्था करके आपको पैसा दे दिया। परंतु यह निश्चित है कि उसके दिलमें आपके बारेमें एक गाँठ पड़ गयी। वह सोचेगा कि यह कर्मचारी बड़ा अभद्र है। इसे बात करनेका भी शऊर नहीं है। ऐसे आदमीको जितनी जल्दी सम्भव हो, हटा देना चाहिये।

जब मौका मिलेगा, वह आपको जलील करनेकी कोशिश करेगा। वह आपके साथ कड़ाईसे पेश आयेगा, आपकी तरक्की रोक लेगा और सदाके लिये आपके प्रति एक दुर्भावना अपने हृदयमें बैठा लेगा।

आपके गरम पड़नेसे मैनेजरके अहंकारको ठेस लगेगी, उसकी शानमें बट्टा लगेगा। हो सकता है कि उसके कारण वह पैसा देकर भी आपको हमेशाके लिये कामसे छुड़वा दे।

'जलमें रहकर मगरसे बैर' ठीक नहीं होता। याद रखिये, पैसा ही सब कुछ नहीं है। पैसेसे सद्भाव कहीं ऊँची चीज है। पैसा पाकर आपने सद्भाव खो दिया तो यह बहुत बड़ी हानि हुई।

× × ×

अब दूसरी सम्भावनापर विचार कीजिये।

आप गरम भी पड़े, पैसा भी नहीं मिला। पश्चात्ताप मिल गया घलुएमें।

हो सकता है मैनेजरके पास पैसा रहा हो, वह आपको देना भी चाहता हो, पर आपने गरम पड़कर स्वयं ही अपना पक्ष कमजोर कर लिया। तब उसने यही ठीक समझा कि आपके क्रोधके दण्डस्वरूप आपको अभी पैसा नहीं दिया जाय। नम्र और आज्ञाकारी कर्मचारियोंको पहले पैसा दे दिया जायगा, उसके बाद देखा जायगा।

आपकी अभद्रतासे आपको जो हानि पहुँच सकती है, उसकी आशंका तो रहेगी ही। मौका पाते ही मैनेजर दूधकी मक्खीकी तरह आपको निकाल बाहर करेगा!

न खुदा ही मिले न विसाले सनम, न इधरके रहे, न उधरके रहे!

× × ×

मैं यह नहीं कहता कि आप पैसा नहीं माँगें। माँगें, जरूर माँगें। मेहनतकी कमाई माँगनेका आपको पूरा हक है।

मैं तो सिर्फ यही कहता हूँ कि आप नम्रतापूर्वक माँगें, पैसेके लिये चित्तका सन्तुलन न खो दें। फिर भी पैसा न मिले तो सन्तोष रखें।

नम्रतासे यह भी हो सकता है कि आपको पैसा देनेकी योजना न रहनेपर भी आपको पैसा मिल जाय। सद्भाव मिलेगा मुफ्तमें!

× × ×

क्रोधसे छुटकारा पानेके लिये स्वार्थत्याग पहली शर्त है।

स्वार्थमें बाधा पड़ते ही हम गरम हो उठते हैं।

कोई-कोई तो इतने गरम हो उठते हैं कि मार-पीट, खूनखराबाकी डिग्रीतक जा पहुँचते हैं।

× × ×

उनसे अच्छे हैं वे, जो गरम तो पड़ते हैं, पर उनका क्रोध वाणीतक ही सीमित रहता है। मारपीटतक वे नहीं जाते।

उनसे भी अच्छे हैं वे, जो वाणीमें भी क्रोधकी छाया नहीं आने देते। परंतु हृदयमें तो उनके क्रोध रह ही जाता है।

सबसे अच्छे हैं वे, जो हृदयसे भी क्रोधको निकाल बाहर करते हैं। उत्तेजनाके कैसे भी विषम-से-विषम क्षण उपस्थित हों, उनके चेहरेपर शिकनतक नहीं आती, हृदयमें भी क्षोभकी हलकी-सी लहर नहीं उठती! काश, हम यह स्थिति प्राप्त कर सकें!

तीन प्रकारके प्रारब्ध

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

प्रारब्धपर मनुष्यका कोई वश नहीं, अपने प्रारब्ध अथवा भगवान्‌की इच्छासे जैसा भी सुख-दुःख प्राप्त हो, उसे भगवान्‌का भेजा हुआ उपहार समझकर प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करे, यही मनुष्यका कर्तव्य है। अपनेको दिखायी नहीं देता, परंतु अनुकूल या प्रतिकूल जो कुछ भी ईश्वरेच्छासे प्राप्त होता है, वह जीवके कल्याणके लिये ही होता है। कल्याणमय प्रभु कभी किसी जीवका अमंगल नहीं करते। उनकी ओरसे जो दण्ड मिलता है, उसमें भी उनकी अपार दया भरी रहती है। वे कर्मोंका भोग कराकर जीवको विशुद्ध एवं मुक्तिका अधिकारी बनाना चाहते हैं।

आत्महत्याको लोकमें अकालमृत्यु कहते हैं। परंतु वास्तवमें अकालमृत्यु प्रायः किसीकी नहीं होती। प्रत्येक जीवकी मृत्युका समय उसके जन्मके साथ ही नियत हो जाता है। वह समय आनेपर ही मृत्यु होती है। अतः वह 'कालमृत्यु' ही है। सुख-दुःख या मृत्यु आदि जितने भी भोग हैं, वे सब प्रारब्धके ही फल हैं। प्रारब्ध या भोग भी तीन प्रकारसे होता है। अतएव उसके तीन भेद हो जाते हैं। उन भेदोंको क्रमशः अनिच्छा, परेच्छा एवं स्वेच्छा प्रारब्ध कहते हैं। जिनको प्राप्त करनेकी इच्छा न तो अपने मनमें रही हो और न दूसरे किसीकी ही इच्छा ऐसा करने-करानेकी रही हो, उस अवस्थामें अनायास दैवयोगसे अपने-आप जो सुख-दुःखादिरूप भोग प्राप्त हो जाते हैं, वे 'अनिच्छा प्रारब्ध' की ही देन हैं। दूसरोंकी इच्छासे प्राप्त होनेवाले सुख-दुःख 'परेच्छा प्रारब्ध' हैं तथा स्वयं इच्छा करके प्रयत्न करनेपर जो सुख-दुःख उपलब्ध होते हैं, वे 'स्वेच्छा प्रारब्ध' जनित माने गये हैं।

इस धारणाके अनुसार यदि किसीके शरीरका दाह असावधानीके कारण अथवा बिना जाने हो गया हो तो इसे अकाल-मृत्यु न कहकर अनिच्छा प्रारब्धका भोग मानना चाहिये। अपने किये हुए पूर्वसंचित कर्मोंमेंसे जो कर्म फल देनेको उन्मुख होते हैं, उन्हें 'प्रारब्ध' नाम दिया गया है। वह प्रारब्ध ही पूर्वोक्त प्रकारसे अनिच्छा, परेच्छा और स्वेच्छासे भोगा जाता है।

आत्महत्यासे होनेवाली मृत्युको हम 'स्वेच्छा प्रारब्ध' का फल कह सकते हैं। एक बात और ध्यान देनेकी है। मृत्यु चाहे स्वेच्छा-प्रारब्धसे हुई या अनिच्छा-प्रारब्धसे, उसमें जो निमित्त बन गया, वह शास्त्रदृष्टिसे अच्छा नहीं है। आगमें जलने या पानीमें डूबने आदिसे होनेवाली मृत्युको 'अपमृत्यु' कहते हैं। इससे जीवकी सद्‌गतिमें बाधा पड़ती है। अनिच्छा-प्रारब्धसे होनेवाली अपमृत्यु पापका फल होनेपर भी स्वयं पापरूप नहीं है। परंतु आत्महत्या पापका फल होनेके साथ-साथ स्वतः एक महान् पाप भी है।

शास्त्रोंमें अपमृत्युके दोषसे मुक्त होनेके लिये विधिपूर्वक 'नारायण-बलि' करनेकी आज्ञा दी गयी है। साथ ही गीता एवं श्रीमद्भागवत आदिके पाठसे भी दुर्मृत्युजनित दोषकी निवृत्ति होकर मृतात्माकी सद्‌गति होती है। आत्महत्याका फल बड़ा भयंकर बताया गया है। आत्महत्यारोंको नरकके उस अन्धकारमय गर्तमें गिरना पड़ता है जहाँ कभी सूर्यके दर्शन नहीं होते। यजुर्वेदमें लिखा है—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

इसके लिये विधि-विधानके साथ मृतात्मका श्राद्ध और नारायण-बलि होना चाहिये। जिस स्थानपर उसकी मृत्यु हुई हो, वहाँ एक सप्ताहतक गीता, श्रीविष्णुसहस्रनाम तथा श्रीमद्‌भागवतका सप्ताह हो। अखण्ड हरिकीर्तनकी भी व्यवस्था की जाय और इन सबका पुण्य मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे संकल्प करके दे दिया जाय। इससे भगवान्‌की कृपा होगी, जिससे सद्‌गति अवश्यम्भावी है।

परलोक-विचार

(तत्त्वदर्शी महात्मा श्रीतैलंग स्वामीजीका उपदेश)

पूर्व और पर—पिछला और अगला जन्म है अथवा नहीं—यह जाननेके लिये यदि स्थिर-चित्तसे विचार किया जाय तो तीनों जन्म—पूर्व, वर्तमान और भविष्यत् स्पष्ट दिखायी देंगे। पूर्वजन्ममें मैंने जैसे कार्य किये हैं और मैं जिस प्रकारके स्वभावका मनुष्य था, मृत्युके अनन्तर कर्मफलके अनुसार उन्हीं सब परमाणुओंको लेकर मेरी यह वर्तमान देह बनी है। वर्तमान जीवनमें मैंने अपने द्वारा अच्छे-बुरे जैसे कुछ काम किये हैं, उन सबको मैं भलीभाँति जानता हूँ। अच्छा काम करनेसे अच्छा फल और बुरा काम करनेसे बुरा फल भोगना पड़ेगा। इस समय जो व्यक्ति विचारकर देखेगा, वही जान सकेगा कि वर्तमान जीवनमें मैं किस प्रकारका मनुष्य तैयार हो रहा हूँ और मेरे इन सब कामोंके अनुसार भविष्य-जीवनमें मैं कैसे स्वभाव और किस प्रकारकी अवस्थाका आदमी बनूँगा। प्रयत्न करनेपर जिस बातको स्वयं जान सकते हैं, उसे जाननेके लिये दूसरेकी सहायताकी आवश्यकता ही क्या है?

वर्तमान जन्मका इहलोक ही पूर्वजन्मका परलोक और वर्तमान जन्मका परलोक ही भविष्य-जन्मका इहलोक है। इस स्थूल-देहके भीतर दूसरी देह है, उसका नाम सूक्ष्म-देह है एवं उसके भीतर भी एक अन्य देह है, जिसका नाम कारण-देह है। केलेकी छालकी भाँति अवस्थित यह त्रिविध देह ही संसार-संज्ञामें विराजमान है। मनुष्य-देहका संघटन, आकृति, वर्ण, स्वभाव, विद्वान् अथवा मूर्ख, कर्कश अथवा नम्र, धार्मिक या अधार्मिक, साधु अथवा चोर, सरल या कुटिल, राजा अथवा जमींदार, मध्यवित्त या गरीब, उच्च वंशमें जन्म अथवा नीच वंशमें जन्म आदि सभी पूर्व-जन्मके कर्म-फलके अनुसार वर्तमान देहके रूपमें प्राप्त हुए हैं।* इसी प्रकार फिर इस जीवनका कर्मफल लेकर अगले जन्मकी देहकी आकृति बनेगी।

जीवके भूमिष्ठ होनेसे आरम्भकर लयपर्यन्त जो समय है, वही उसकी परमायु है। यदि आध्यात्मिक अर्थको लिया जाय तो जीवकी परमायु अनन्त है। जीव अक्षय और अमर है। जीवके ध्वंस होनेपर भी उसका उपकरण कभी नष्ट नहीं होता। साधारण जनोंका विश्वास है कि जो जीव जितना पुण्यवान् है, उसकी परमायु भी उतनी ही अधिक होती है और वह तदनुसार ही अधिक समयतक जीवित रहता है; परंतु यह भूल है। जीव संसारसे जितना दूर रहेगा, उतना ही उसे पाप स्पर्श नहीं कर सकेगा। जीव कर्मफल भोगनेके लिये संसारमें आता है। कारण, संसार ही कर्मफल-भोगका स्थान है। अतएव जितने दिनोंतक जीवका कर्मफल-भोग समाप्त नहीं होता—जितने दिनोंतक जीव पापसे मुक्त नहीं होता, उतने दिनोंतक उसे संसारमें रहना पड़ता है। जो पुण्यवान् है, वह अधिक दिनोंतक संसारवासी नहीं होता। जो जितना पापी है, उसे उतने ही दिनोंतक संसारमें रहकर कर्मफल भुगतना पड़ता है। जिसका कर्मफल शेष हो जाता है, वह संसारसे चला जाता है। जिसका जीवन जितना शीघ्र लयको प्राप्त होता है, वह उतना ही पुण्यवान् है। उसका जीवन उतना ही पाप-शून्य है। पाप-शून्य होनेसे वह ईश्वरमें लय हो जाता है, उस समय उसकी आयु असीम है। जबतक ईश्वरकी सत्ता विद्यमान रहेगी, तबतक उसकी सत्ता वर्तमान रहेगी।

मनुष्य जैसे आगे-आगे पुण्य करता रहता है, उसका फल-भोग भी दिन-रातकी तरह आगे-आगे चलता रहता है। इसीलिये कर्मफल शेष न होनेसे बार-बार संसारमें आना पड़ता है। उसके जन्म और मरणका ताँता बँधा रहता है। जिनका यह विश्वास है कि पुनर्वार जन्म नहीं ग्रहण करना पड़ता, मृत्यु ही उसका शेष है, उनकी यह धारणा गलत है। ईश्वर है, यह स्वीकार कर लेनेपर पुनर्जन्म भी अवश्य मानना पड़ेगा। यदि ईश्वर है तो मनुष्यका आत्मा भी है। ईश्वरका ध्वंस नहीं,

* वर्तमानोऽन्ययोः कालो गुणाभिव्यापको यथा। एवं जन्मान्ययोरेतद्धर्माधर्मनिदर्शनम्॥ (श्रीमद्भा० ६।१।४७)

अतएव ईश्वरकी शक्ति आत्माका भी विनाश नहीं। यदि पुनर्जन्म न हो तो ईश्वरको कभी दयामय नहीं कहा जा सकता। कारण, इस जीवनमें कोई राजा, कोई प्रजा, कोई धनी, कोई दरिद्र, कोई अन्धा, कोई खंज, कोई उत्तम कुलमें और कोई नीच वंशमें जन्म ग्रहण क्यों करते हैं? यह विषमता क्यों है?

इसका स्पष्ट प्रमाण—जिस जीवने जैसे-जैसे कर्म किये हैं, उनका भोग शेष न होनेतक उसे किये हुए कर्मफलके अनुसार बार-बार देह धारण करना पड़ता है। जो जन्मान्ध है, उसने इस जीवनमें कुछ भी नहीं देख पाया, किंतु अन्य सब अच्छी तरह देखते हैं—इसका क्या कोई कारण नहीं है?

जान पड़ता है, यह कोई भी अस्वीकार नहीं करेगा कि पूर्वजन्मके पापका फल-भोग ही इसका कारण है। इस जीवनकी देह, आकृति, स्वभाव, ज्ञान आदि सभी पूर्वजन्मके कर्मफलके अनुसार ही बने हैं, जिसने जैसे कर्म किये हैं, उसकी आकृति और स्वभाव ठीक उसी प्रकारके बने हैं। जो चोरी करके जीवन व्यतीत कर रहा है, अगले जन्ममें उसकी आकृति और स्वभाव ठीक दस्युकी भाँति रूक्ष रहेंगे। जो धर्म-चर्चा करके जीवन व्यतीत कर रहा है, उसकी आकृति सौम्य और स्वभाव अति कोमल होगा।

एक आदमी जीवनभर धर्म-चर्चा करके भी सुखी नहीं रहा, संसारमें नाना प्रकारके कष्ट उठाये और एक आदमीने अति घृणित कार्य—लाम्पट्य अथवा दस्युवृत्ति करके भी सुखसे जीवन व्यतीत किया—इसका स्पष्ट प्रमाण पूर्वजन्म ही है। जिस व्यक्तिने धर्म-चर्चा या धर्माचरण करके इस जीवनमें कष्ट पाया है, वह एक समय अवश्य सुख-भोग करेगा। इस जीवनमें उसने जो कष्ट पाया है, वह उसके पूर्वजन्मके बुरे कर्मका फल था, जिसके भोगका समय उपस्थित होनेसे कष्ट उठाना पड़ा और दूसरे आदमीके लिये सम्प्रति पूर्वजन्मके शुभ फल भोगनेका समय उपस्थित हुआ, इसलिये उसने सुखसे जीवन व्यतीत किया, किंतु इसके बाद उसे बड़ा कष्ट भुगतना होगा। कितने ही लोग कह देते हैं कि पाप-कर्म करनेमें प्रवृत्ति एवं पुण्य-कर्म करनेमें निवृत्ति ईश्वरकी ही इच्छा और प्रेरणासे होती है, परंतु यह बड़े अज्ञानकी बात है। रिपु और इन्द्रियाँ सभी अच्छा-बुरा कार्य करती हैं। राग करनेसे ही अनिष्ट होगा। कामना होनेसे ही प्राप्तिकी इच्छा होगी, लोभ करनेसे ही पर-द्रव्य-अपहरणकी चेष्टा होगी, अहंकार होनेसे ही दूसरेका अनिष्ट-चिन्तन करना होगा आदि। जिसका जो धर्म है, वह अपना कार्य करता ही है। इसलिये ब्रह्माने मनुष्यको हिताहितका ज्ञान दिया है और सब जीवोंमें श्रेष्ठ बनाया है। मृत्यु ही कभी शेष नहीं हो सकती। यदि मृत्यु ही शेष हो तो ईश्वरको प्रतिदिन संख्यातीत आत्माएँ उत्पन्न करनेका कार्य करना पड़े तथा मनुष्यकी अपेक्षा उसका यह गोरखधन्धा कितना ही अधिक बढ़ जाय और जीवन कष्टमय हो जाय।

देहके विच्छिन्न होनेपर भी आत्माका अपकार उसी प्रकार नहीं होता, जैसे घरके जलते रहनेपर भी गृहके अभ्यन्तरस्थ आकाशकी कुछ भी क्षति नहीं होती। आत्मा हन्ता भी नहीं और हत भी नहीं।* द्वेष ही संतापका मूल है, द्वेष ही संसारका बन्धन है और द्वेष ही मुक्तिका प्रतिबन्धक है, अतएव यत्नपूर्वक द्वेषका परित्याग करो। सुख-दुःख देहके नहीं हैं, आत्माके भी नहीं हैं। यद्यपि आत्मा वायुकी भाँति निर्मल और निर्लेप है, तथापि जीव ईश्वरकी मायासे मोहित होकर मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ—इस प्रकार अपने-आप ही समझता है। विश्वमोहिनी उस अनादि अविद्याका नाम ही माया है। जन्मते ही जीवका उस अविद्या अर्थात् मायाके साथ सम्बन्ध हो जाता है, इसीसे वह संसारमें बँध जाता है। बुद्धि-इन्द्रियादिके समीप अवस्थितिके कारण आत्मा निर्मल होनेपर भी तत्तत्-पदार्थके समगुण-सम्पन्न प्रतीत होता है। मन, बुद्धि और अहंकार जीवके सहकारी हैं। अपने किये हुएका फल अपनेको ही भोगना पड़ेगा अर्थात् जिसका जैसा कर्मफल है, उसे वैसा ही कर्म-फल भुगतना होगा। फिर सृष्टिके समय जीव मन-

* नायं हन्ति न हन्यते। (कठोपनिषद् १। २। १९ तथा गीता २। १९)

प्रभृतिके साथ सम्बन्ध लेकर देह-धारण करनेको बाध्य होता है। जबतक जीव मुक्त नहीं हो जाता, तबतक उसे इसी रूपमें भ्रमण करना पड़ता है। देह मनस्तापका मूल है, देह संसारका कारण है और कर्म-फलसे ही उस देहकी उत्पत्ति है। कर्म दो प्रकारका है—पाप और पुण्य। उस पाप और पुण्यके अंशके अनुसार ही देहीको सुख-दुःख प्राप्त होते हैं। जितना पाप, उतना ही दुःख और जितना पुण्य, उतना ही सुख भोगना पड़ेगा। यह सुख-दुःख दिन-रातकी भाँति परस्परसापेक्ष हैं और भोगके बिना इनका शेष नहीं होता।* भोग शेष हुए बिना मुक्ति नहीं होती।

आत्मा शरीरमें कर्तारूप है। जिस वस्तुके जीव-देहसे विच्छिन्न होनेपर जीवका जीवन नहीं रहता, इन्द्रियादि फिर कोई कार्य नहीं कर सकतीं, वही वस्तु जीवका आत्मा है। आत्माहीन देहको सुख-दुःख कुछ भी अनुभव नहीं होता। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, ज्ञान कुछ भी नहीं रहता, अतएव यह निश्चय है कि आत्मा ही देहका कर्ता है। सुख-दुःख ज्ञानके द्वार-स्वरूप हैं। आत्माको तिरस्कार या पुरस्कार देनेके लिये उस आत्माके वासस्थल देहका प्रयोजन है। क्लेश एवं विषादका अनुभव शरीरकी सहायता पाये बिना आत्माको नहीं हो सकता। आत्मा एकाकी चला जाता है—देह उसके साथ नहीं जाती, इसलिये आत्माको दण्ड देना असम्भव है। प्रत्येक जीव-देहमें ईश्वर आत्मारूपसे वर्तमान है। जीवात्मा परमात्माका अंश है। जैसे पाप अनेक प्रकारके हैं, वैसे ही उनके दण्ड भी अनेक प्रकारके हैं। पुण्य भी अनेक प्रकारके और हर्ष भी अनेक प्रकारके हैं। अनुताप ही पापका प्रधान दण्ड और हर्ष ही पुण्यका प्रधान पुरस्कार है। मनुष्यका हृदय पाप-पुण्यके निराकरणका तराजू है। पुण्यसे हर्ष और पापसे अनुताप अपने-आप ही मनुष्यके हृदयमें उत्पन्न होकर उसके किये हुए कार्यका उपयुक्त पुरस्कार प्रदान करते हैं। इस दण्डको देखकर ही जो बुद्धिमान् हैं, वे स्वयं पापसे बचते हैं। पंचभूत केवल परमाणुसमष्टिमात्र है। परमाणु अविनश्वर हैं, अतएव भूतसमष्टिका भी विनाश नहीं है। मृत-देह फिर उसी पंचभूतमें मिल जाती है। जो मनुष्य आज तुम्हारे सामने विराजमान है, उसका शरीर पूर्वजन्ममें किस जीवके परमाणुओंद्वारा निर्मित हुआ है? उस भूतपूर्व जीवके पुनर्जन्मका फल-रूप तुम्हारे सम्मुखस्थ मनुष्य है।

जो आत्मा जिस परिमाणमें पापसे निर्मुक्त है, जो आत्मा जिस परिमाणमें विषय-वासनासे शून्य है, वह आत्मा उसी परिमाणमें उन्नत है। धार्मिकका आत्मा पापात्माके आत्मासे बहुत उन्नत है। उस उन्नतिशील आत्माका वह उन्नत स्वभाव देह-त्याग करनेपर भी नष्ट नहीं होता; प्रत्युत संसारकी जो कुछ वासना, जो एक प्रवृत्ति थी, उसके बद्ध होनेपर आत्मा क्रमशः उन्नतिके पथपर चलने लगता है। आत्मा पुरुष और देह प्रकृति है। आत्मा जबतक प्रकृतिसे संयुक्त नहीं होता, तबतक निष्काम और निर्गुण अवस्थामें रहता है। प्रकृतिके मिलनेसे ही उसकी इच्छा-प्रवृत्ति उत्पन्न होती है और प्रकृतिसे पृथक् होनेपर फिर वह पूर्ववत् स्वभाव अर्थात् निर्गुण और निर्लिप्त-भावको प्राप्त होता है। इसका तात्पर्य यह है कि आत्माकी जबतक प्रवृत्ति-वासनादि वर्तमान रहती है, तबतक वह पाप-देहका आश्रय लिये रहता है और तभीतक वह सगुण, सर्वविषयोंसे लिप्त, वासनादिसंयुक्त रहता है तथा देहका परित्याग करनेपर फिर पूर्वभावको प्राप्त हो जाता है। आत्मा प्रथम निर्गुण होनेपर भी उसे देहके आश्रयसे गुणसम्पन्न होना पड़ता है।

पश्वादि-देहसे मनुष्य-देह लाभ करनेमें प्रकृति-परिवर्तनके लिये अतिशय कष्ट और चेष्टा करनी पड़ती है। पशुसे मनुष्य होना जितना कठिन है, मनुष्य होकर मनुष्यत्व लाभ करना उससे भी अधिक कठिन है। मनुष्यसे देवता होना जितना कठिन है, मनुष्य होकर मनुष्यत्व लाभ करना उसकी अपेक्षा भी कठिन है। शुभ कार्यके अनुष्ठानद्वारा मनुष्य देवत्व प्राप्त कर सकता है; किंतु अनायास प्रकृत मनुष्य नहीं हो सकता। समस्त भोग और आशाका परित्याग किये बिना मुक्तिका द्वार

* नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते।
प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षयः।

नहीं खुलता। सकाम शुभ कार्योंके साधनद्वारा मुक्तिका पथ और भी दुर्गम बन जाता है। जीव देवलोकके ऐश्वर्य-भोगमें मत्त होकर भोगावसानमें मर्त्यलोकमें आनेके उपयुक्त हो जाता है। इसलिये महापुरुष देवधामकी कामना नहीं करते। कारण, वह कर्मफलजन्य चिरस्थायी नहीं है। प्रकृत मनुष्यत्व लाभ करनेके लिये सब इन्द्रियोंका वेग संवरण करना होता है। रिपुवर्गका वशीकरण, अन्त:करणका विशुद्धीकरण, प्राणिमात्रमें समदर्शन, अभिमान-त्याग आदि मनुष्यत्वलाभ करनेके प्रधान उपादान हैं। इनके अतिरिक्त शम, दम, तितिक्षा, समाधान, श्रद्धा एवं उपरति*—ये कतिपय गुण भी मनुष्यमें होने चाहिये।

मनुष्यत्वलाभ हो जानेपर भी मुक्तिकी इच्छा सहजमें ही नहीं होती। विषय-भोगमें जितने दिनोंतक क्लेशकी उपलब्धि नहीं होती, उतने दिनोंतक जीव महाजितेन्द्रिय और योगीन्द्र होनेपर भी मुक्ति-लाभ नहीं कर सकता। वासना-त्याग ही मुक्तिका मुख्य उपाय है। मुक्तिकी इच्छा होनेसे ही मुक्ति-पद-लाभ होगा, यह बात नहीं है।

महापुरुषोंका सदा संग न करनेसे मुक्तिका मार्ग दिखायेगा कौन? सत्पुरुषोंका सहवास जीवके लिये सौभाग्य-सापेक्ष है। इच्छा करनेसे ही साधु-दर्शन नहीं होता। संतलोग प्राय: निर्जन स्थानमें ही रहते हैं। वे कभी दृष्टिगोचर हो जायँ तो भी सहजमें पहचाने नहीं जाते और यदि पहचाने जा सकें तो वे अपने निकट सम्पर्कमें रखना नहीं चाहते। निकटमें रहनेका अधिकार पा जानेपर भी उनके हृदयके भाव हम समझ नहीं सकते। नदीको पार करनेके लिये जैसे नाविकसे नौका लेनी पड़ती है, उसी प्रकार संसार-सागरसे पार होनेके लिये महापुरुषका सत्संग करना आवश्यक है। सत्संगके द्वारा सभी बातें सुलभ हो जाती हैं। धार्मिकका आत्मा धर्म-बलसे क्रमशः उन्नत होकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त हो जाता है। यह उन्नति एक महीने या एक वर्षमें नहीं होती। बहुत समयतक प्रयत्न करनेपर मोक्षप्राप्ति होती है। इसी प्रकार पापीका आत्मा क्रमशः अधोगतिको पहुँचता है। स्वर्ग और नरक-वास अन्य कुछ नहीं है, केवल आत्माकी उन्नति और अवनतिमात्र है। आत्माकी उन्नति और अवनतिके साथ अवस्थान्तर-प्राप्तिके लिये उसका नाना स्थानोंमें और नाना प्रकारसे जन्म होता है। इस विशाल विस्तृत जगत्में किसने कहाँ, किस भावसे पुनर्जन्म ग्रहण किया है, इसका अनुसन्धान नहीं होता, इसीलिये पुनर्जन्मपर जनसाधारण विश्वास नहीं करते। पूर्वजन्म और परकाल हम देख नहीं पाते। पुनर्जन्म प्राप्त हुआ है—इस प्रकार साक्षात्में आकर किसीने बताया नहीं। केवल अनुमान और युक्तिद्वारा ही सिद्ध करके उसमें विश्वास करना पड़ता है। नहीं तो धर्माधर्म, पाप-पुण्य किसीमें भी भेद या पार्थक्य नहीं रहता।

लोग पाप करते हुए क्यों डरते हैं? केवल पुनर्जन्ममें विश्वास रखनेके कारण ही और इसी भयसे कि फिर घोर यन्त्रणा भुगतनी पड़ेगी। इस जीवनमें कोई विद्वान्, कोई मूर्ख, कोई पण्डित, कोई ज्योतिषी, कोई उच्च श्रेणीका गायक और कोई वाद्ययन्त्र बजानेमें निपुण है, इसका कारण यही है कि पूर्वजन्ममें वह उस कलामें निपुण था, इस जन्ममें वही आत्मा है, केवल देहका प्रभेद है। यदि कर्मफल न होता तो अवश्य इतना भेद नहीं रहता। अच्छे-बुरे कार्योंके लिये ही जीवको विभिन्न अवस्थाओंमें गिरना पड़ता है। अच्छे कार्यसे आत्माकी उन्नति (ऊर्ध्वगति) होती है और बुरा कार्य करनेसे अवनति होती है।

---

* शमादिषट्कसम्पत्तिः—शमदमोपरतितितिक्षासमाधानश्रद्धाख्याः। शमः—श्रवणादिव्यतिरिक्तविषयेभ्यो मनसो निग्रहः। दमः—बाह्येन्द्रियाणां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यो निवर्तनम्। निवर्तितानामेषां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्य उपरमम‍ुपरतिः। तितिक्षा—शीतोष्णादिद्वन्द्वसहिष्णुता। निगृहीतस्य मनसः श्रवणादौ तदनुगुणविषये च समाधिः समाधानम्। गुरूपदिष्टवेदान्तवाक्ये विश्वासः श्रद्धा। (वेदान्तसारः १८। २५)

अर्थात् शम—ईश्वर-विषयक श्रवण-मननके अतिरिक्त विषयोंसे अन्तरिन्द्रियोंका निग्रह, दम—श्रवणादि भिन्न विषयोंसे बाह्येन्द्रियका दमन, उपरति—निवर्तित इन्द्रियोंका उनके अतिरिक्त विषयोंसे उपराम, तितिक्षा—शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंका सहन, समाधान—ईश्वरविषयक श्रवणादिमें मनकी एकाग्रता एवं श्रद्धा—गुरु-वाक्य एवं वेदान्त-वचनमें विश्वास है।

भगवान्से सम्बन्ध (अपनापन)

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

❀ मनुष्य सांसारिक वस्तु-व्यक्ति आदिसे जितना अपना सम्बन्ध मानता है, उतना ही वह पराधीन हो जाता है। अगर वह केवल भगवान्से अपना सम्बन्ध माने तो सदाके लिये स्वाधीन हो जाय।

❀ साधक अपनेको भगवान्का समझकर संसारका काम करे तो संसारका भी काम ठीक होगा और भगवान्का भी। परंतु अपनेको संसारका समझकर संसारका काम करे तो संसारका काम भी ठीक नहीं होगा और भगवान्का काम (भजन) तो होगा ही नहीं।

❀ प्रभु अपने हैं, पर अपने लिये नहीं हैं, प्रत्युत हम प्रभुके लिये हैं। तात्पर्य है कि हमें प्रभुसे कुछ लेना नहीं है, प्रत्युत अपने-आपको उन्हें देना है और विपरीत-से-विपरीत परिस्थिति आनेपर भी उसको प्रभुका भेजा प्रसाद समझकर प्रसन्न रहना है।

❀ सदुपयोग करनेके लिये ही वस्तु अपनी है, अपने-आपको देनेके लिये ही भगवान् अपने हैं। इसलिये वस्तुको संसारमें लगा दे और अपने-आपको भगवान्में लगा दे।

❀ पति मर सकता है, स्त्रीको छोड़ भी सकता है, फिर भी नये घर जाते समय लड़कीको चिन्ता नहीं होती। परंतु भगवान् न तो कभी मरते हैं और न कभी छोड़ते ही हैं, फिर भगवान्से सम्बन्ध जोड़नेपर किस बातकी चिन्ता? भगवान्को पकड़ना तो आता है, पर छोड़ना आता ही नहीं।

❀ 'मैं भगवान्का हूँ और भगवान् मेरे हैं'—इस अपनेपनके समान कोई भी योग्यता, पात्रता, अधिकारिता आदि नहीं है।

❀ भक्तको अपनी योग्यता आदिकी तरफ न देखकर केवल भगवान्के अपनेपनकी तरफ ही देखते रहना चाहिये।

❀ भगवान्में अपनापन सबसे सुगम और श्रेष्ठ साधन है।

❀ भगवान्के सिवाय कोई मेरा नहीं—यह असली भक्ति है।

❀ भगवान् सर्वसमर्थ होते हुए भी हमारेसे दूर होनेमें असमर्थ हैं।

❀ भगवान् हमारे हैं, पर मिली हुई वस्तु हमारी नहीं है, प्रत्युत भगवान्की है।

❀ मनुष्य पदार्थों और क्रियाओंको अपनी मानता है तो सर्वथा परतन्त्र हो जाता है और भगवान्को अपना मानता है तथा उनके अनन्य शरण होता है तो सर्वथा स्वतन्त्र हो जाता है।

❀ भगवान्के साथ हमारा सम्बन्ध स्वतः-स्वाभाविक है। इस सम्बन्धके लिये किसी बल, योग्यता, दूसरेकी सहायता आदिकी जरूरत नहीं है।

❀ अभी जैसे संसारका सम्बन्ध माना है, वह प्राप्त है, नजदीक है, वैसे ही परमात्माका सम्बन्ध मान लें और जैसे परमात्माका सम्बन्ध माना है कि वह अप्राप्त है, दूर है, वैसे ही संसारका सम्बन्ध मान लें।

❀ ऐसा मान लो कि मैं भगवान्का हूँ। अगर 'मैं संसारका हूँ' ऐसा मानोगे तो संसारका काम दूर रहा, भगवान्का भजन करते हुए भी भगवान्को भूल जाओगे।

❀ आप कैसे ही हों, अभी इसी क्षण मान लें कि 'मैं भगवान्का हूँ।'

❀ भगवान्का ध्यान करनेकी अपेक्षा उनमें अपनापन करना श्रेष्ठ है। अपनापन होनेसे ध्यान अपने-आप होता है। अपने-आप होनेवाला साधन श्रेष्ठ होता है।

❀ भगवान्को अपनापन जितना प्रिय है, उतने त्याग, तपस्या आदि प्रिय नहीं हैं।

❀ परमात्माके सम्मुख होनेका उपाय है—संसारसे सर्वथा विमुख होना।

❀ भगवान्के साथ दृढ़ अपनापन सम्पूर्ण दोषोंको खा जाता है।

❀ जबतक भगवान्का सम्बन्ध नहीं होता, तबतक सब लौकिक ही होता है। भगवान्का सम्बन्ध होनेसे सब अलौकिक हो जाता है।

'कस न होइ मगु मंगलदाता'

(श्रीसुभाषचन्द्रजी बग्गा)

रावणके अत्याचारसे व्याकुल देवतागण अपने स्वार्थमें अन्धे हो रहे थे। इसीलिये सभी चाहते थे कि ***'रामहि भरतहि भेट न होई'*** धरती कठोर बनकर भरतजीके पथको कठिन बना देना चाहती थी, सूर्य किरणोंसे संतप्त करके उन्हें चित्रकूटकी यात्रासे विरत करना चाहते थे। निषादराज भी भरतजीको अपने आराध्य प्रभु श्रीरामका विरोधी जानकर घोषणा करते हैं कि हम गंगापार करनेसे पहले भरतको युद्धसरिता और हमारे रुधिरकी सरितामें स्नान कराये बिना नहीं जाने देंगे। लेकिन भरतजीके शील-स्वभाव और प्रेमकी रीतिको जानकर निषादराजको अपना निर्णय बदलना पड़ा और श्रीराम-भरत-मिलनमें निषादराजकी अहम भूमिका रही। श्रीभरतकी यात्रामें पहला अवरोध समाप्त हुआ।

भरतजी जब प्रयागराजमें प्रवेश करते हैं, तब गोस्वामी तुलसीदासजीने मानसमें कहा कि भरतजीके चरणोंमें काँटे और कंकड़ चुभनेसे छाले ऐसे चमकते हैं जैसे कमलकोशमें ओसके कण झलकते हैं।

झलका झलकत पायन्ह कैसें। पंकज कोस ओस कन जैसें॥

वनपथमें काँटे होना तो स्वाभाविक ही है। प्रभु श्रीराम भी वनमें चलते हैं तो काँटे उनके पाँवोंमें चुभ जाते हैं। गोस्वामीजीने सीताजी अथवा लक्ष्मणजीके पाँवोंमें काँटे लगनेका वर्णन नहीं किया है, केवल श्रीरामके चरणोंमें ही काँटोंके लगनेकी बात कही है। परंतु काँटोंसे भरी उनकी वनयात्राको भगवान्ने सुखद और आनन्द प्रदान करनेवाली बना दिया है।

भगवान्ने अपने अंशमेंसे पाँच तत्त्व—भूमि, गगन, वायु, अग्नि, जलका समावेशकर मानवदेहकी रचना की।

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥

हमारे मनीषियोंने इन पाँच तत्त्वोंको सदा याद रखनेके लिये भगवान्में आये पाँच अक्षरोंका विश्लेषण इस प्रकार किया है—'भ' यानी भूमि, 'ग' यानी गगन (आकाश), 'व' यानी वायु (हवा), अ से अग्नि और न से नीर यानी जल।

भगवान् रामके नररूपमें अयोध्यामें प्रकट होने (जन्म लेने)-पर सभी कुछ अनुकूल हो गया।

जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल॥

और श्रीरामजीकी वनयात्रामें भी ये पाँचों तत्त्व अनुकूल हुए।

१-जहाँ-जहाँ श्रीरामचन्द्रजीके चरण चले जाते हैं, उनके समान इन्द्रकी पुरी अमरावती भी नहीं है। (पृथ्वीकी अनुकूलता)

जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं। तिन्ह समान अमरावति नाहीं॥

२-श्रीराम पर्वत, वन और पशु-पक्षियोंको देखते हुए चले जा रहे हैं। रास्तेमें बादल छाया करते हैं और देवता फूल बरसाते और सिहाते हैं। (गगनकी अनुकूलता)

छाँह करहिं घन बिबुधगन बरषहिं सुमन सिहाहिं।
देखत गिरि बन बिहग मृग रामु चले मग जाहिं॥

३-भौरोंकी पंक्तियाँ बहुत ही सुन्दर गुंजार करती हैं और सुख देनेवाली शीतल, मन्द, सुगन्धित हवा चलती रहती है। (वायुकी अनुकूलता)

गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी। त्रिबिध बयारि बहइ सुख देनी॥

४-श्रीरामके नामकी वन्दनामें तुलसीदासजीने उन्हें अग्नि (कृषानु), सूर्य (भानु)और चन्द्रमा (हिमकर)-

का हेतु बताया है।

बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥

वनमें प्रभु श्रीरामने सीताजीको समझाया कि जबतक मैं राक्षसोंका वध करूँ, तबतक तुम अग्निमें निवास करो और सीताजी प्रभुके चरणोंको हृदयमें धरकर अग्निमें समा गयीं। (अग्निकी अनुकूलता)

तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी॥

५–जिन तालाबों और नदियोंमें श्रीरामजी स्नान कर लेते हैं, देवसरोवर और देवनदियाँ भी उनकी बड़ाई करती हैं। (जलकी अनुकूलता)

जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहि देव सर सरित सराहहिं॥

भगवान् राम अपने स्वयंके दुःखसे दुखी नहीं होते, पर अपने भक्तोंको थोड़ा–सा कष्ट आता देखकर उनका हृदय द्रवित हो जाता है। वैसे तो हर जीवको भगवान् अपनी असीम कृपासे अनुग्रहीत करते हैं, फिर भी वे अपने भक्तोंका योग–क्षेम स्वयं वहन करते हैं। गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं कि जो अनन्य प्रेमी भक्तजन निरन्तर मेरा चिन्तन करते हुए मुझ परमेश्वरको निष्काम भावसे भजते हैं, उन नित्य–निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

प्रेममूर्ति श्रीभरतके पैरोंमें फफोले पड़ गये, पर उनके मुखसे आहतक नहीं निकली। जो झलका पड़ गया, वह फूटता नहीं है। झलकेका आधार श्रीभरत हैं और पृथ्वी आधेय है। श्रीभरतकी विरह–अग्नि ही इस झलका रूपसे शोभित हो रही है। वह यदि फूट जायगा तो सीताजीकी माता पृथ्वीदेवीको वह विरह–ज्वाला दुःख देगी, अतः वह फूटता नहीं।

प्रयागराजमें देवताओं विशेषकर इन्द्रको भरतजीकी श्रीरामके प्रति अनन्य भक्ति और अथाह प्रेमका अनुभव होता है और भरतजीकी राहमें रुकावट डालना भूलकर उनकी सराहना करते हैं। प्रभु श्रीरामकी कृपासे पाँचों तत्त्व भरतके अनुकूल हो गये। परिणामस्वरूप भरतजीका स्वागत प्रभु श्रीरामसे भी बढ़कर हुआ।

१–भरतजीके लिये पृथ्वी कोमल हो गयी और मार्ग मंगलका मूल बन गया। (पृथ्वीकी अनुकूलता)

देखि दसा सुर बरिसहिं फूला। भइ मृदु महि मगु मंगल मूला॥

२–बादल छाया किये जा रहे हैं, सुख देनेवाली सुन्दर हवा बह रही है। भरतजीके जाते समय मार्ग जैसा सुखदायक हुआ, वैसा श्रीरामचन्द्रजीके लिये भी नहीं हुआ था। (गगनकी अनुकूलता)

किएँ जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात॥

३–ऋषि भारद्वाजके प्रभावसे भरतजी और अवधवासियोंके लिये बनाये गये निवास–स्थलपर वसन्तऋतु छा गयी और शीतल, मन्द, सुगन्ध तीन प्रकारकी हवा बहने लगी। (वायुकी अनुकूलता)

रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी। सब कहँ सुलभ पदारथ चारी॥

४–भरतजीके हृदयमें यही सोच है—असल दावाग्नि बस दहक रही है कि मेरे कारण श्रीसीताराम दुखी हुए और बिना रघुनाथजीके चरण देखे मेरे जीकी जलन न जायगी।

आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहिं सिरु नाइ।
देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ॥

और श्रीरामके आश्रममें प्रवेश करते ही भरतजीके दुःख और जलन मिट गये। (अग्निकी अनुकूलता)

करत प्रबेस मिटे दुख दावा।

५–भरतजी कहीं स्नान करते हैं, कहीं प्रणाम करते हैं। भरतजीने पाँच दिनमें सब तीर्थस्थलोंके दर्शन कर लिये। (जलकी अनुकूलता)

देखे थल तीरथ सकल भरत पाँच दिन माझ।

भरत तो श्रीरामके प्यारे हैं और फिर उनके छोटे भाई हैं। तब भला मार्ग उनके लिये मंगलदायक कैसे न हो? तात्पर्य यह है कि जिसे श्रीराम प्रिय हैं, उसके लिये सब कुछ अनुकूल हो जाता है।

भरतु राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मगु मंगलदाता॥

मृत्युका दर्शन

(डॉ० श्री गो० दा० फेगडे)

मनुष्य मर्त्य प्राणी है। भगवान् श्रीकृष्णजीने भगवद्गीतामें कहा है, **'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च'** जो जन्मता है उसका मरना निश्चित है, जो मरता है उसका जन्मना भी निश्चित है। (गीता २। २७) यद्यपि मृत्यु निश्चित होती है, फिर उसका समय और स्वरूप किसीको भी ज्ञात नहीं होता। अभीतक मृत्युका अनुभव बतानेवाला कोई पैदा नहीं हुआ। मृत्यु जब होनी है और जैसी होनी है, वैसी होती ही है, कोई भी डॉक्टर या अस्पताल उसे रोक नहीं सकता। ***'आया है सो जायगा राजा-रंक-फकीर'*** बस, इतना ही फर्क है, कि ***'एक सिंघासन चढ़ि चले एक बँधे जंजीर'***। मृत्यु अटल है, फिर भी हर व्यक्ति अमर रहनेकी चाह रखता है, महाभारतका निम्न श्लोक इस वृत्तिका यथार्थ वर्णन करता है—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतःपरम्॥

रोज-रोज प्राणी मरते हैं, फिर भी शेष लोग अमर रहनेकी इच्छा करते हैं, संसारमें इससे बड़ा आश्चर्य कौन-सा है?

जन्म और मृत्यु एक ही सिक्केके दो पहलू हैं, फिर भी मानवको न जन्मका ज्ञान होता है न मरनेका। दृश्य शरीरसे (स्थूल शरीरसे) जीवके (चेतनाके) निकल जानेको हम मृत्यु कहते हैं, लेकिन वह जीवात्मा या चेतना कहाँसे आती है? और कहाँ जाती है? इसका रहस्य भौतिक विज्ञानको आजतक अज्ञात है, मनुष्यको पंचमहाभूतोंसे बना स्थूल देह ही ज्ञात होता है, परंतु स्थूल देहको क्रियाशील बनानेवाला सूक्ष्म देह (चेतना) ज्ञात नहीं होता। उसका ज्ञान केवल अध्यात्मशास्त्रमें ही प्राप्त हो सकता है। सर्वसाधारण मनुष्य स्थूल शरीरको ही 'मैं' समझता है, ऐसे देहात्मक ज्ञानको अध्यात्मशास्त्रमें 'मिथ्याज्ञान' कहते हैं। उसका सत्यज्ञान भगवान्‌द्वारा बताये हुए ब्रह्मविद्याशास्त्रमें ही मिल सकता है। नचिकेताके यमराजसे मृत्युका रहस्य जाननेकी हठ करनेपर यमराजने कहा था, 'मृत्यु प्रभुका विधान है।'

भगवान् श्रीकृष्णजीने भगवद्गीतामें स्पष्ट कहा है, 'शरीर नाशवान् है, परंतु आत्मा अमर है, यह आत्मा किसी कालमें भी न जन्मता है, न मरता है, न मारा जाता है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। इस आत्माको शस्त्रादि काट नहीं सकते हैं और इसको आग जला नहीं सकती है तथा इसको जल गीला नहीं कर सकते हैं और वायु इसे सुखा नहीं सकता है।'

इस जीवात्माका कार्य क्या है? यह कर्मके अनुसार एक शरीरसे (योनिसे) दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है। पहला शरीर 'पूर्वजन्म' और दूसरा शरीर 'पुनर्जन्म' कहलाता है। पुनर्जन्मका (देहान्तरका) विषय भगवान् श्रीकृष्ण उदाहरण देकर स्पष्ट करते हैं कि 'जिस तरह मनुष्य पुराने वस्त्र उतार देता है और नये वस्त्र धारण करता है, ठीक उसी तरह देहधारी जीवात्मा पुराना शरीर छोड़कर नये शरीरमें प्रवेश करता है।' इस तरह जन्म-मृत्युकी अखण्ड परम्परा मूल सृष्टि रचनासे चली आ रही है। सृष्टिके रंग-मंचपर किरदार आते हैं और जाते हैं, लेकिन सृष्टिका नाटक लगातार चलता है।

मृत्युका मतलब क्या है? क्या वही जीवनका अन्त है? मृत्युके बाद पुनर्जन्म है या नहीं? यदि है तो जीवात्मा कौन-सा देह धारण करता है? उसे एक देहसे निकालकर दूसरे देहमें कौन ले जाता है? इस तरहके अनेक रहस्यमय और जटिल सवाल अनादिकालसे मानवको सता रहे हैं, उन गूढ़ और अनादिकालीन सवालोंपर विभिन्न तत्त्ववेत्ताओंने अपने-अपने तर्कानुमानके अनुसार परस्पर भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये हैं, भारतीय दर्शनोंमें चार्वाक दर्शन छोड़ दिया जाय तो सब अपने-अपने तरीकेसे पुनर्जन्मकी सम्मति देते हैं, अपने-अपने कर्मके अनुसार जीवात्मा योनि धारण करता है, पाप-

पुण्यके परिणामस्वरूप आत्मा एक योनिसे दूसरी योनिमें (८४ लक्ष योनियोंमें) घूमती-फिरती है, ऐसी मान्यता है कि सत्कर्मसे (धर्माचरणसे) पुण्य और असत्कर्मसे (अधर्माचरणसे) पाप होता है। परोपकारसे पुण्य और परपीड़ासे (हिंसासे) पाप होता है। धर्माचरणसे ऊर्ध्वलोकमें (श्रेष्ठ योनिमें) और अधर्माचरणसे अध:लोकमें (निम्न योनिमें) पुनर्जन्म होता है। यदि आचरण धर्म और अधर्मके परे हो तो आत्मा जन्म-मृत्युके फेरोंसे मुक्त होती है, उस अवस्थाको हम 'मोक्ष' कहते हैं। परब्रह्म परमेश्वरने कहा है कि मोक्षके बाद जीवात्मा परमानन्द और परमशान्तिको प्राप्त होती है।

जैनदर्शन परमेश्वरका अस्तित्व नकारता है, लेकिन जीवको नित्य समझता है। चार्वाकदर्शन पुनर्जन्म नहीं मानता, उनके अनुसार वह केवल एक कल्पनामात्र है **'यावत् जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।'** (जबतक जिओ सुखसे जीओ, कर्जा लेकर घी पीओ) ऐसा भौतिकवादी विचार चार्वाकने रखा है। उनकी रायसे **'देहस्य नाशो मुक्तिः'** (देहका नाश ही मुक्ति है)। कुछ भौतिकवादी वैज्ञानिक भी आत्मा, पूर्वजन्म, पुनर्जन्म नहीं मानते; लेकिन कुछ वैज्ञानिक और पाश्चात्य तत्त्वचिन्तकोंने पुनर्जन्मका विज्ञान जाननेका प्रयास किया है। यूनानियोंमें सुकरात, पायथागोरस, प्लेटो आदि तत्त्वचिन्तकोंने पुनर्जन्मको अपने चिन्तनका एक महत्त्वपूर्ण विषय बनाया था। सुकरातने कहा था 'मेरी ऐसी धारणा है कि पुनर्जन्म सत्य है और मृत शरीरका त्याग करनेके बाद जीवात्मा फिर शरीर धारण करता है।' प्राचीन ईसाई धर्मके इतिहासमें भी (बाइबिलमें) पुनर्जन्मके बारेमें निर्देश दिखते हैं। इस्लाम-धर्ममें पुनर्जन्म नहीं मानते, लेकिन पाप और पुण्यके अनुसार स्वर्ग (जन्नत) और नर्क (जहन्नुम) मानते हैं। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक श्रीआइन्स्टाइनने स्वीकार किया है कि 'शरीरान्तर्गत चेतनाका स्पष्टीकरण करना पदार्थ विज्ञानशास्त्रके लिये आजतक सम्भव नहीं हुआ।' चेतनाका सूक्ष्मातिसूक्ष्म और गुह्यतम सत्य ज्ञान मानव बुद्धिको तर्क-वितर्कके सहारे प्राप्त करना मुमकिन नहीं, वह ज्ञान सर्वज्ञ परमेश्वरको ही होता है। वह भगवान् श्रीकृष्णद्वारा कथित श्रीमद्भगवद्गीतामें उपलब्ध है, लेकिन वह पानेके लिये श्रद्धा होनी चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णने खुद कहा है कि **'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः'** (गीता ४।३९) अर्थात् तत्पर हुआ श्रद्धावान् पुरुष ज्ञानको प्राप्त होता है। भारतीय अध्यात्मशास्त्रने हजारों सालोंसे आत्मा, परमात्मा, सर्ग, प्रतिसर्ग, पुनर्जन्म, कर्मसिद्धान्त, विकारवृत्ति, मन, बुद्धि, अहंकार स्थूलशरीरके बाहरके चेतन जगत्का अन्वेषण किया है।

मानव-जीवन निश्चित श्वासोच्छ्वासोंका होता है, सर्वज्ञ श्रीचक्रधर स्वामीजीने कहा है, ***'संसार हा दीर्घ स्वप्न गा'*** (यह संसार दीर्घ सपनेकी तरह है)। यद्यपि मानवदेह नाशवान् है, वही 'ज्ञानदेह' होता है। मानवदेहमें ही मुक्तिका ज्ञान प्राप्त हो सकता है। अतः दुर्लभ मानवदेहका उपयोग धर्मके आचरणके लिये करना श्रेयस्कर है। कर्मके अनुसार फल मिलता है, वह फल इस जन्ममें ही नहीं, अगले जन्मोंमें भी भुगतना पड़ता है। धर्मका आचरण करनेके लिये शरीर और मनका स्वस्थ होना आवश्यक है। **'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'** उक्तिको ध्यानमें रखते हुए आचार-विचार रखना समझदारीका काम है, सन्तोंने मनुष्य-देहको भगवान्का मन्दिर कहा है। अस्वस्थ या मृत शरीरमें आत्मकल्याण कैसे हो सकता है? इसलिये कहते हैं—

यावत् स्वस्थमिदं देहं यावन्मृत्युश्च दूरतः।
तावदात्महितं कुर्यात् प्राणान्ते किं करिष्यसि॥

जबतक शरीर स्वस्थ है, जबतक मृत्यु दूर है, तबतक ही जीव आत्मकल्याण कर सकता है, मृत्युके बाद क्या कर सकेगा? ***'जान है तो जहान है'*** यह कहावत सही है, तथापि देह एक साधन है, साध्य नहीं। उसे साधन ही समझना चाहिये। उसमें माया-ममता नहीं

रखनी चाहिये, वही तो दु:खोंकी जड़ होती है।

'भोगवादी' लोग शरीरका उपयोग ऐशो-आरामके लिये करते हैं, इन्द्रियसुख क्षणिक होते हैं, यह जानते हुए भी उनके पीछे भागते हैं, उन्हींमें दु:खके बीज बोये हुए रहते हैं, यह भूल जाते हैं। आजके जमानेमें बीमारियाँ, व्यसन, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, कलह, अशान्ति आदि समस्याएँ भोगवादकी ही उपज हैं।

दूसरी तरफ 'निराशावादी लोग' जीवनको निरर्थक समझकर आत्महत्या करते हैं, धर्मशास्त्रके अनुसार आत्महत्या निषिद्ध है। हिन्दू-धर्मके अनुसार आत्मघात करनेवाला नरकमें जाता है, उसे मुक्ति नहीं मिलती। संसारके सभी धर्म संयमसे जीनेकी कला सिखाते हैं। धर्मका मूल उद्देश्य ही स्वैराचार और भ्रष्टाचारपर अंकुश रखना है। यदि धर्मके नामपर ही हिंसा, अनाचार और भ्रष्टाचार होता है तो फिर क्या है? इस संसारको झूठा समझकर उससे भागना नहीं चाहिये और सच्चा समझकर उससे लिपटना भी नहीं, कीचड़में रहनेवाले कमलके फूलकी तरह जीना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णजीने मृत्युका शोक करना व्यर्थ बताया है, वही सत्य अपने बेटेके मृत्युका शोक करनेवाली वृद्धाको भगवान् बुद्धने 'जिस घरमें किसीकी मृत्यु न हुई हो, ऐसे घरसे थोड़ी सरसों ले आ'—इस कथनद्वारा बताया था।

धर्म मनुष्यको 'जीना' तो सिखाता ही है, 'मरना' भी सिखाता है। धर्माचरणसे व्याधिका नाश होकर मनुष्यको परमशान्ति और परमसुख मिलता है, इसलिये मनुष्यको धर्मके अनुसार ही जीवन जीना चाहिये—

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यः धर्मसंग्रहः॥

शरीर क्षणभंगुर है, वैभव भी शाश्वत नहीं, मृत्यु कभी भी आ सकती है, अतः धर्माचरण करना (मनुष्यका) कर्तव्य है। आजके युगमें अधिकतर लोग 'धर्मसंग्रह' की बजाय 'धनसंग्रह' के दीवाने होते हैं। जिन्दगी-भर कमाया हुआ धन यहींपर छोड़कर खाली हाथ मर जाते हैं। आखिरमें जगज्जेता सिकन्दरका क्या हुआ? धनके पीछे भागनेवाले भ्रष्टाचारियोंको यह ध्यानमें रखना चाहिये—

कमाओ धनदौलत और हीरे मोती।
लेकिन याद रखो कफनमें जेब नहीं होती॥

जीवनकी आसक्ति छोड़कर मृत्युका सहर्ष स्वागत करना महानताका लक्ष्य है। ईसामसीह, सुकरात, सन्त कबीर, गुरु नानक, रमण महर्षि तथा हँसते-हँसते सूलीपर चढ़नेवाले स्वातन्त्र्यवीर महान् थे।

इसलिये 'जियो तो ऐसे जियो कि सब कुछ तुम्हारा है और मरो तो ऐसे मरो कि तुम्हारा कुछ भी नहीं है।' ऐसा कहा जाता है कि ***'अन्त मति सो गति'***। भगवान् श्रीकृष्णने भी गीतामें कहा है—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(८।५)

जो पुरुष अन्तकालमें मेरेको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

अध्यात्मशास्त्रके अनुसार जीवात्मा परमेश्वरकी भक्तिसे ही जन्म-मरणके फेरोंसे मुक्त हो सकती है, सर्वज्ञ श्रीचक्रधर स्वामीजीने कहा है, 'इस जगत्‌में एक परमेश्वरके अतिरिक्त किसी भी साधनद्वारा जीवात्मा मुक्त नहीं हो सकती।' मृत्यु तो किसी भी क्षण आ सकती है, यहाँ कल क्या होगा, किसने जाना? इसलिये श्रीआदिशंकराचार्यने कहा है—

निःश्वासे न हि विश्वासः
कदा रुद्धो भविष्यति।
कीर्तनीयमतो बाल्याद्
हरेर्नामैव केवलम्॥

श्वासका कोई भरोसा नहीं, वह कभी भी रुक सकती है। अतः बचपनसे ही परमेश्वरका नामस्मरण करो। संत कबीरने भी कहा है, ***'मन हरीसे मिले तो हरी मिले निश्शंक।'*** आखिरमें सारांश यह है कि **'स्मर नित्यं (परमेश्वरं) नियतः।'**

'रामहि केवल प्रेमु पिआरा'

(श्रीसुरेशजी शर्मा)

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने बताया कि अगर आप रामको पाना चाहते हो तो उसका आधार 'प्रेम' है। प्रेमके साथ उन्होंने 'केवल' शब्द जोड़ दिया है। अर्थात् केवल 'प्रेम' अर्थात् और किसी चीजकी जरूरत नहीं, किंतु यह ढाई आखरका 'प्रेम' शब्द बहुत कठिन है। यह बड़े-बड़े ज्ञानियों और विद्वानोंको भ्रमित करता है और न समझनेपर गलत रास्तेपर ले जाता है। प्रेमतत्त्वको समझनेके लिये श्रद्धा एवं भक्तिकी आवश्यकता होती है। यह मन एवं बुद्धिका नहीं वरन् हृदयका विषय है।

जितने पूजा-पाठ, कर्मकाण्ड, स्वाध्याय, भजन-कीर्तन एवं ध्यान-धारणा हैं, इन सबका हेतु प्रेम प्रगट करना है। मुख्य तत्त्व या लक्ष्य 'प्रेम' है, बाकी तो साधनमात्र है। अब प्रश्न उठता है—प्रेम कैसे करें, किससे करें? क्या केवल रामसे प्रेम करें या रामके अनुसार करें? अत: रामतक जानेके दो रास्ते हैं, एक रामतक जानेका सीधा रास्ता रामसे प्रेम करना है। दूसरा रास्ता रामने जिस-जिससे प्रेम किया, हम भी उस-उससे प्रेम करें तो रामतक पहुँच जायँगे। राम तीनों माताओंसे समान प्रेम करते हैं। इसीलिये चौदह वर्षके पश्चात् सर्वप्रथम माता कैकेयीके भवन जाते हैं एवं मान-सम्मान देते हैं। राम अपने पिता दशरथसे प्रेम करते हैं। राजा दशरथने रामसे नहीं कहा वन जाओ, पर पिताने वचन दे दिया है, अत: उस वचनकी रक्षाहेतु वन जाते हैं। राम भरत एवं शत्रुघ्नसे अथाह स्नेह करते हैं। छोटे भाई लक्ष्मणके मूर्छित होनेपर कहते हैं—***'मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।'*** अपने भक्त एवं सेवक हनुमान्के लिये वे कहते हैं, ***'तुम मम प्रिय भरत सम भाई।'*** तुम मुझे भरतके समान प्यारे हो। सुग्रीव रामके सखा हैं, उनके लिये रामने कहा है, ***'जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥'*** भगवान् केवटके प्रति स्नेह प्रकट करते हैं। निषादराजको बराबर बिठाते हैं। जाम्बवान्को आदर देते हैं।

माता सीताके प्रेमका वर्णन करनेके लिये गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—***'गिरा अनयन नयन बिनु बानी।'*** कौन कवि वर्णनकर अपयशका भागी होगा अर्थात् लेखनी पूर्ण वर्णन करनेमें समर्थ नहीं है। फिर भी सुन्दरकाण्डमें हनुमान्जी महाराजके मुखसे कहलवाया है ***'तुम्ह ते प्रेमु राम कें दूना।'*** यह कविका वाणी-चातुर्य है। जनकपुरवासियोंको राम खूब प्रेम करते हैं एवं नगर-भ्रमणके बहाने दर्शन-सुख देते हैं। अपने शरणागत विभीषणको लंकापतिकी पदवी देते हैं। सबसे बड़ी बात अपने शत्रु खर-दूषन, रावण, मेघनाद, कुम्भकर्णको भी दयाकर मोक्ष प्रदान करते हैं। यह प्रेमकी पराकाष्ठा है। अयोध्यानगरी, सरयूनदी एवं अयोध्यावासियोंके प्रति उनके प्रेमका कहना ही क्या? जब राम चौदह वर्षका वनवास काटकर आते हैं तो हर अयोध्यावासीके गले मिल प्रेम प्रकट करते हैं। यह रामका प्रेम है। ***'अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥'*** (रा०च०मा० ७।६।५)और सबसे ज्यादा राम अपने भक्तसे प्रेम करते हैं। जिनमें शबरी, सुतीक्ष्ण, जटायु और हम सब हैं। जब रावण सीता माताका हरण कर ले जाता है तो राम पेड़-पत्ते, नदी-पर्वत, पशु-पक्षी सबसे रोते हुए पूछते हैं। ***'हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥'*** यह रामका प्रकृतिके प्रति द्रवित प्रेम है।

अगर इन सबको एक जगह इकट्ठा कर लिया जाय तो चित्र बनता है ***'सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥'*** (रा०च०मा० १।८।२) अर्थात् रामकी तरह प्रेम करना यानी अखिल विश्वके कण-कणसे अर्थात् अपने परिवार, मित्र, सेवक, समाज, राष्ट्र एवं अखिल ब्रह्माण्डसे प्यार करना है। यही रामराज्य है। वैसे रामको प्रेम करना और रामकी तरह प्रेम करना, दोनों रास्ते एक ही बिन्दुपर मिलते हैं, चाहे कहींसे यात्रा प्रारम्भ करें।

बड़ी दुस्तर है प्रभुकी माया

(श्रीताराचन्दजी आहूजा)

सृष्टिमें तीन तत्त्व हैं—ब्रह्म, जीव और माया। ब्रह्म सर्वोच्च शक्ति है, जबकि जीव और माया इन दोनों शक्तियोंका उद्भव ब्रह्मशक्तिसे हुआ है। गीतामें भगवान् कहते हैं कि मेरे द्वारा निर्मित मायाशक्ति तथा प्रकृति त्रिगुणात्मक भावोंसे भासित है अर्थात् सत्त्व, रज एवं तम गुणोंसे युक्त है। तीनों गुण ही सारे संसारको मोहितकर समूचे प्राणी-समुदायको अपनी अँगुलियोंपर नचाते रहते हैं, इसीलिये जीव इन तीनों गुणोंसे परे मुझ अविनाशीको नहीं जानता। परमात्माद्वारा निर्मित होनेके कारण माया-शक्ति अतिशय शक्तिशाली है, अतः इसे पार करना जीवके लिये सहज और सरल नहीं है। जबतक मायारूपी भवसागरको पार नहीं किया जाता, तबतक परमतत्त्वतक नहीं पहुँचा जा सकता। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें स्वयं कहा है कि यह मेरी अलौकिक और अति अद्भुत त्रिगुणमयी माया बड़ी दुस्तर है, असाध्य है—'**मम माया दुरत्यया**' साथ ही यह भी कहा है कि जो पुरुष मुझे अनन्य भावसे निरन्तर भजते रहते हैं, वे इस मायाको पार कर जाते हैं और मुझको प्राप्त कर लेते हैं।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(७।१४)

मायाका अर्थ है अज्ञान, अविद्या यानी वास्तविकताको न देख पाना ही माया है। माया जीवका ज्ञान हर लेती है; क्योंकि वह पदार्थोंको मिथ्यारूपमें दर्शाती है और उन्हें निम्नतर रूप प्रदान करती है। माया हमारी बुद्धिको, हमारे बोधको चकरा देती है, जिसके कारण असली वस्तु नकली दिखायी देने लगती है। हमारे मानस-पटलपर देह, इन्द्रियाँ, बुद्धि एवं अहंकारका आवरण छा जानेसे हम परमसत्ताको पहचान नहीं पाते हैं। भगवान्ने गीतामें कहा भी है कि मायाके द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है, ऐसे असुर स्वभावको धारण किये हुए मनुष्योंमें नीच, दूषित कर्म करनेवाले मूढ़ लोग मुझको नहीं भजते। परिणामस्वरूप ऐसे अज्ञानी जीव बार-बार जन्म-मृत्युको प्राप्त होकर युगों-युगोंतक भवसागरमें गोते लगाते रहते हैं और दुःखको प्राप्त होते रहते हैं। अस्तु, आत्यन्तिक दुःख-निवृत्ति और परमानन्द-प्राप्तिके लिये दो बातोंको समझना अनिवार्य है—प्रथम मायाके स्वरूपको सही-सही पहचानना अर्थात् अविद्याको जानना और दूसरा परमात्मसत्ताको पहचानकर उसके प्रति दृढ़ अनुरक्तिका भाव रखते हुए उसीकी शरणमें चले जाना। यदि हम यह जान जायँ कि वही परमसत्ता हमारे अन्दर विद्यमान है तो हम त्रिविध गुणोंके भावोंसे मोहित नहीं होंगे और हमारे सभी कर्म भगवत्-कर्म ही होंगे।

हमारी दूसरी भ्रान्ति जो परमात्माके निरन्तर भजन करनेसे सम्बन्धित है, वह भी हमें परमतत्त्वतक पहुँचने नहीं देती। परमात्माके भजनको अधिकांश लोग कर्मकाण्डतक ही सीमित मान लेते हैं। वस्तुतः परमतत्त्व तो आदर्श गुणोंका समुच्चय है। उसके गुणोंको आत्मसात् करनेका निरन्तर अभ्यास ही उसका भजन है। आज जो अध्यात्म एवं भजनके नामपर विडम्बना छायी हुई है, वह वास्तवमें भजनका छद्म रूप ही है। आजकल फैशन-भक्तिका प्रचार-प्रसार बड़े जोर-शोरसे चल रहा है। इसमें वाणी कीर्तन करती रहती है और तालके साथ भजन गाये जाते हैं। भगवान्को रिझानेका उपक्रम किया जाता है फिल्मी रागों और हाई-फाई संगीत उपकरणोंसे, परंतु उसमें भावका सर्वथा अभाव रहता है। यह तो एक प्रकारका देहाभ्यास ही है, इसे भक्ति नहीं कहा जा सकता। भक्ति तो भावकी भूमिसे अवतरित होती है, जिसमें मन और बुद्धिका समर्पण आवश्यक होता है। सबसे पहले तो भ्रान्तियोंसे मुक्ति पानेका उपाय करना होगा, तभी दुस्तर मायासे पार जानेका मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।

भगवान् कहते हैं कि यह गुणमयी दैवी माया

मेरी ही है। वस्तुतः भगवान्‌की माया प्रकृतिका एक प्रकारसे विकार ही है, जो आवरणके रूपमें हमारी बुद्धिके चारों ओर बुन दिया गया है। महापुरुषोंके अनुसार संसारकी प्रत्येक वस्तु जो हमें भगवान्‌से दूर ले जाती है, वह मायाका ही रूप है। यह सात्त्विक है, राजसिक है और तामसिक है। महर्षि अरविन्दजीका कथन है—यह ताना-बाना ईश्वरद्वारा बुना गया है, परा-प्रकृति इस बुनावटके मूलमें है। इसके एक-एक धागेमें छिपी है। हमें इसका उपयोगकर और इसे पीछे छोड़ आगे बढ़ना है, देवाधिदेवसे साक्षात्कार करना है। उसका तरीका एक ही है, जिसकी चर्चा भगवान् श्रीकृष्णद्वारा गीतामें की गयी है—**'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।'** अर्थात् जो मेरी ओर मुड़ते हैं। भावसे मेरा भजन करते हैं, वे इस मायाको पार कर जाते हैं।

त्रिगुणमयी माया कैसी होती है, इसे एक सुन्दर पौराणिक उदाहरणद्वारा समझा जा सकता है। ऋषभदेव सनातन संस्कृतिमें चौबीस अवतारोंमेंसे एक अवतारके रूपमें माने गये हैं। जैन तीर्थंकरोंमें वे प्रथम तीर्थंकरके रूपमें पूजे जाते हैं। उनके दो पुत्र थे—भरत और बाहुबली। भरत बड़े थे और बाहुबली छोटे। भरतके हिस्सेमें बड़ा राज्य आया, जबकि तपस्वी होनेके कारण बाहुबलीने छोटे राज्यसे सन्तोष कर लिया। भरत चक्रवर्ती सम्राट् बनना चाहते थे। उन्होंने सारे भारतको जीतकर इस आशयका शंखनाद कर दिया। बाहुबलीके राज्यमें प्रवेश करनेपर उनका रथ द्वारपर ही यह कहकर रोक दिया गया कि जबतक बाहुबलीका राज्य जीत नहीं लिया जाता, तबतक वे चक्रवर्ती सम्राट् कहलानेके अधिकारी नहीं हैं। तब भरत अनुज बाहुबलीके पास गये और उनसे अपनी सत्ताको मान लेनेका आग्रह किया, लेकिन वे नहीं माने। तब दोनोंमें मल्लयुद्ध हुआ, जिसमें बाहुबली विजयी हुए। विजयी होकर भी बाहुबलीने राज्यका परित्याग कर दिया। भरतसे बोले—'आप बड़े हैं, आप ही राज्य ले लें और चक्रवर्ती बन जायँ। हमें तो अपनी तपस्या ही प्रिय है।' भरत सोचने लगे कि क्या चक्रवर्ती राज्य इसलिये पाया था कि भाईसे विमुख होना पड़े। सारा वैभव पानेके बाद भी मनमें असन्तोषकी लहर उठती रही। साथ ही छोटे भाईसे पराजित होनेका दुःख भी कहीं-न-कहीं मनको उद्विग्न कर रहा था। इस उद्विग्नतासे मुक्ति पानेके लिये भरतने भी राज्य छोड़ दिया और तप करनेके लिये वनको प्रस्थान किया।

उधर बाहुबली भी बड़े अशान्त थे। राज्य सौंपकर तप भी कर रहे थे, परंतु मन शान्त नहीं था। पिता ऋषभदेवसे मनकी अशान्तिका कारण पूछा। पिताके आदेशपर बाहुबलीकी सगी बहनने समझाते हुए कहा—'तुम राज्य, वैभव और ऐश्वर्य छोड़कर रजोगुणको तो पार कर गये हो, पर सात्त्विकताका अहंकार छोड़ना अभी बाकी है। तुम्हारे बड़े भैया भरतजी सब कुछ छोड़कर तम-रज-सत्‌रूपी मायाके सभी अवरोधोंको पारकर कैवल्य ज्ञानको प्राप्त हो गये हैं।' बाहुबलीने बहनकी बातपर गम्भीरतासे विचार किया, वे ध्यानस्थ हुए और कैवल्य ज्ञानको प्राप्त हो गये। यही भगवान्‌की दुरत्यया माया है। पहले इसी मायाने भरतको तमोगुण-रजोगुणके झंझावातोंमें डाला और फिर इसी मायाने बाहुबलीको भी सत्त्वगुणके क्षेत्रमें घेर लिया। अन्ततः वे भी प्रभुपरायण होनेके बाद इस मायासे पार हो गये। वस्तुतः क्रीड़ारत माया ही मन है। मनको जीतना ही मायाको जीतना है। ध्यानमें जैसे ही मनको लाँघ लिया जाता है, मायाकी क्रीड़ा समाप्त हो जाती है और परमतत्त्वकी अनुभूति होने लगती है। गीतामें भगवान्‌ने कई स्थानोंपर कहा है—**'मामेकं शरणं व्रज', 'मामेव ये प्रपद्यन्ते', 'मन्मना भव मद्भक्तो'** इत्यादि। इन सबका आशय यही है कि भगवान्‌का भजन किये बिना मुक्ति नहीं मिलेगी। वस्तुतः मायापर विजय प्राप्त करनेकी एकमात्र रामबाण औषधि है—प्रभुकी शरणागति और भावपूर्ण भक्ति। इसका कोई विकल्प नहीं है।

पर्यावरण-प्रदूषण—समस्या और समाधान

(श्रीमिथिलेश कुमारजी शुक्ल)

आज फैला चहुँ दिशाओं में बड़ा परिताप
यह प्रदूषण है मनुज के लोभ का अभिशाप।
दौड़ जो आगे निकलने की है अंधाधुंध
है वही फैला रही वातावरण में धुंध॥
आज भौतिक लालसा में मनुज अतिशय लिप्त
दूर है पर्यावरण से आज सारा विश्व।
प्रगति की जो दौड़ अंधी, सभी भागीदार
है इसीसे हो रहा पर्यावरण संहार॥

पर्यावरण बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय है। आज प्रत्येक मनुष्य दैनिक जीवनमें पर्यावरण-प्रदूषणकी समस्यासे दो-चार हो रहा है। स्वस्थ और स्वच्छ पर्यावरण मानवके शारीरिक-मानसिक विकासके लिये अत्यधिक आवश्यक है, परंतु आधुनिक विकसित मानवको स्वच्छ वायु, स्वच्छ जल तथा प्रदूषणरहित पृथ्वीका साथ नहीं मिल पा रहा है, जिससे मनुष्यको अनेक शारीरिक तथा मानसिक समस्याओंका सामना करना पड़ रहा है।

हमारे पूर्वजोंको पर्यावरणका महत्त्व भलीभाँति पता था, तभी तो उन्होंने आम, पीपल, नीम एवं बरगदके वृक्षोंमें देवताओंका निवास मानकर इन वृक्षोंकी सुरक्षा सुनिश्चित कर दी थी। यही नहीं, इन वृक्षोंकी जड़ोंमें प्रतिदिन जल देनेको पुण्य कार्य माना गया था, परंतु आज इसके वैज्ञानिक एवं पर्यावरणीय महत्त्वको देखते हुए प्रत्येक व्यक्तिके लिये यह बात जाननेयोग्य है कि वृक्षोंको सूखनेसे बचानेके लिये इन्हें प्रतिदिन जलसे सींचना आवश्यक है। आज इस बातकी पुष्टि हो चुकी है कि पीपल तथा नीमके वृक्ष पर्यावरणकी दृष्टिसे सर्वाधिक अनुकूल हैं तथा इनसे सर्वाधिक प्राणवायु (ऑक्सीजन) प्राप्त होती है। भगवान् कृष्णने भी गीतामें कहा है कि '**अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्**' अर्थात् मैं सभी वृक्षोंमें पीपलका वृक्ष हूँ। इस प्रकारसे पर्यावरणकी शुद्धताके लिये सभी व्यक्तियोंको पीपलके पेड़में भगवान् कृष्णके स्वरूपका दर्शन करते हुए अपने जीवनमें एक पीपलके वृक्षका अवश्य रोपण करना होगा।

जबसे मानवने बढ़ती जनसंख्याके भरण-पोषणके लिये कृषिहेतु जंगलोंका कटाव प्रारम्भ किया, तभीसे पर्यावरण-प्रदूषणकी समस्याका प्रारम्भ हुआ। जंगल काटनेसे पृथ्वी नग्न हो गयी, जिसके अनेक दुष्परिणाम हुए। वर्षाकी बूँदें पहले वृक्षोंपर गिरती थीं एवं वृक्षोंके पत्तों, टहनियों और तनेके सहारे धीरे-धीरे पृथ्वीपर जलके स्वरूपमें उतरती थीं, ऐसी स्थितिमें पृथ्वीकी उपजाऊ मिट्टीका कटाव नहीं होता था, परंतु वन-कर्तन हो जानेसे वर्षाकी बूँदें सीधे नग्न पृथ्वीपर टकराने लगीं; जिससे भूमिकी ऊपरी उपजाऊ मिट्टी भी कटकर जलके साथ बह गयी। वृक्षोंकी जड़ें वर्षा-जलको सोखती थीं, वह कार्य रुक गया, जिससे भूमिगत जलमें कमी आयी तथा पीने एवं सिंचाईयोग्य भूमिगत जल कम होता गया। वृक्षोंकी जड़ें भी मिट्टीको बाँधकर रखती थीं, वह पकड़ ढीली होनेसे मृदाक्षरण एवं अपरदन बढ़ने लगा। यही कटी हुई मृदा वर्षा-जलके साथ बहकर नदियोंमें पहुँचने लगी तथा नदियोंकी तलहटीमें भरने लगी, जिससे नदियोंकी गहराई कम होने लगी, जिससे नदियोंके जल ढोनेकी क्षमता कम हो गयी तथा नदियोंका पेटा मृदा (मिट्टी)-से भर जानेके कारण बाढ़की समस्या भी उत्पन्न होने लगी। उधर कृषियोग्य उपजाऊ मिट्टी अपरदनसे कट जानेके फलस्वरूप मिट्टीकी उपजाऊ क्षमतामें भी कमी आयी, फलतः मनुष्यने उत्पादकता बढ़ानेके लिये पर्यावरणके लिये घातक रासायनिक खादोंका प्रयोगकर मिट्टीकी उपजाऊ शक्ति बढ़ायी, जिससे पर्यावरणका भारी क्षरण हुआ।

मनुष्यने अपने जीवन-स्तरमें सुधारके लिये बड़े पैमानेपर उद्योग लगाये, परंतु उनसे निकलनेवाले कार्बन तथा अन्य हानिकारक गैसोंके निस्तारण एवं शोधनहेतु कोई उपाय नहीं किया। इससे शुद्ध वायुमण्डलमें कार्बन-डाईऑक्साइड (CO_2)-की मात्रा बढ़ी है। इससे पर्यावरणके लिये घातक अन्य हानिकारक गैसोंका भी उत्सर्जन हुआ है। बढ़ते परिवहनके साधनोंसे वायुमण्डलमें

कार्बन-मोनो-ऑक्साइड आदि अन्य विषैली गैसोंकी मात्राके साथ-साथ कार्बनकी मात्रा भी बढ़ी है; क्योंकि इन वाहनोंमें डीजल, पेट्रोल आदिका अधिकाधिक प्रयोग हुआ है। वायुमण्डलमें कार्बन-डाई-ऑक्साइडकी मात्रा बढ़ जानेसे तापमानमें निरन्तर वृद्धि होने लगी, जिससे ध्रुवीय क्षेत्रोंकी बर्फ पिघलनेसे जल-प्रलयका खतरा मँडराने लगा है। नगरीकरणमें वृद्धिके कारण महानगरोंका गन्दा जल नदियों एवं समुद्रमें उड़ेला जाने लगा, जिससे जलमें प्रदूषण फैलने लगा, नदियोंका जल पीने तथा नहानेलायक भी नहीं बचा है। यहाँतक कि अपने देशकी सबसे पवित्र गंगा नदीका जल भी आज अत्यधिक प्रदूषित हो चुका है। जिस अमृततुल्य जलमें कीटाणु नहीं पड़ते थे, उस जलमें अत्यन्त प्रदूषण फैल चुका है। कानपुर आदि कई स्थानोंपर तो गंगाका पारिस्थितिकी तन्त्र इतना कातिल हो चुका है कि वहाँकी मछलियों एवं अन्य जलीय जीवोंको भी भारी खतरा उत्पन्न हो चुका है। इस प्रदूषणका एक कारण और भी है कि गंगा आदि नदियोंपर बड़े-बड़े बाँध बनाकर उनका जल रोक लिया गया है, जिससे आगे नदियोंके जलमें कमी हो गयी तथा नदी-जलका प्रवाह कम हो जानेसे प्रदूषणने और भी विकराल स्वरूप धारण कर लिया है।

इसके अलावा ध्वनि-प्रदूषणकी मात्रा भी निरन्तर बढ़ रही है। ध्वनि-प्रदूषणके कारण मानवकी एकाग्रतामें कमी हो जाती है।

प्रदूषणका सबसे महत्त्वपूर्ण स्वरूप सांस्कृतिक प्रदूषण भौतिकवादकी चरम परिणतिके कारण है। वस्तुतः सांस्कृतिक प्रदूषण पूरे मानव-समुदायको अपने आगोशमें ले चुका है। चरम स्वार्थपरता, धन-संग्रहकी असीम हवस, शुद्ध चिन्तनमें कमी, राजनीतिमें हिंसा, युवावर्गमें नशेकी लत, समाजमें बढ़ता भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकताके कुचक्र तथा जातिवादके जहरने भी भारतके सामाजिक-सांस्कृतिक प्रदूषणको बढ़ाया है। इससे आपसी प्रेम-व्यवहार एवं भाईचारेका भी क्षरण हुआ है। इन्हीं कारणोंसे आज न केवल भारतके वरन् विश्वके पर्यावरणकी गुणवत्तामें भयंकर ह्रास हुआ है।

यदि हम इस समस्याके समाधानकी बात करें तो 'सादा जीवन-उच्च विचार' रखकर ही पर्यावरणको शुद्ध रखा जा सकता है। प्रत्येक मनुष्यको अपने जीवनमें पर्यावरणके अनुकूल वृक्षोंका रोपण करना होगा। राह-चलते कूड़ा-कचरा इधर-उधर न फेंक करके उचित निर्धारित स्थानपर ही डालना होगा। अपने आस-पास जितने वृक्ष हैं, उनकी सुरक्षा एवं उनके संवर्धनका ध्यान रखना होगा। ऐसी व्यवस्था करनी है, जिससे उद्योगों एवं वाहनोंसे कम-से-कम कार्बन एवं अन्य विषैली गैसोंका उत्सर्जन हो। वायु तथा सौर ऊर्जाके अधिकाधिक प्रयोगसे हम पर्यावरण-प्रदूषणकी मात्राको काफी कम कर सकते हैं। आज हमारी सरकारकी प्राथमिकतामें पर्यावरण-संरक्षण एवं संवर्धन प्रमुखतासे शामिल है तथा उनके द्वारा पर्यावरणके हितके लिये अनेक योजनाएँ संचालित की जा रही हैं। भारत सरकारने गंगाकी सफाईके लिये अलग मन्त्रालय बनाकर तथा एक नियत समयमें गंगाको स्वच्छ करनेका संकल्प लेकर पर्यावरण-प्रेमियों एवं माँ गंगासे अगाध श्रद्धा रखनेवाले लोगोंमें नयी ऊर्जाका संचार किया है। गंगाके संरक्षणहेतु किये जा रहे इस प्रयासकी सफलताके लिये देशके जनमानसको अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे इस योजनासे जुड़ना होगा। उत्तर प्रदेश तथा अन्य कई राज्य सरकारोंद्वारा वृक्षारोपण एवं वन्य-जीव-संरक्षणके क्षेत्रमें अधिकाधिक कार्य करके पर्यावरण-संरक्षणका महत्त्वपूर्ण कार्य किया जा रहा है, पर आवश्यकता है जनचेतना और जन-सहभागिताकी। अन्तमें मैं अपने स्वरचित छन्दके माध्यमसे समाधान देते हुए लेखको विराम देता हूँ—

बंजर जमीन खाली देश में पड़ी हुई जो
उसमें भी वृक्षों की हरीतिमा बिछी रहे।
एक-एक भूमि में लगा के वृक्ष योजना से
वृक्षों की सुरक्षा की भी लालसा दिखी रहे।
पीपल-पलाश नीम पाकड़ के वृक्ष घने
सारे देश-भूमिमें उमंगमें खड़े रहें।
ऐसा संकल्प हो कि बंजर रहे न कहीं
हरी भूमि, हरे वृक्ष, जीवन हरा रहे॥

भगवान् श्रीकृष्णका उद्धवको ज्ञानोपदेश

[श्रीमद्भागवतके अन्तर्गत आयी भिक्षुगीतापर आधारित एक बोधकथा]

(श्रीअर्जुनकुमारजी बन्सल)

भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवजीके संग अपने महलके निजी कक्षमें विराजमान हैं। इस संसारमें दुष्टजनोंके व्यवहारका मानव जीवनपर प्रभाव और उससे मुक्तिके उपायपर चर्चा चल रही है। श्रीकृष्ण कहने लगे—

बार्हस्पत्य स वै नात्र साधुर्वै दुर्जनेरितैः।
दुरुक्तैर्भिन्नमात्मानं यः समाधातुमीश्वरः॥

(श्रीमद्भा० ११।२३।२)

हे देवगुरु बृहस्पतिजीके शिष्य उद्धव! इस जगत्‌में ऐसे सन्त पुरुष दुर्लभ हैं, जो दुष्टोंकी कटु वाणीको सहन कर सकें।

न तथा तप्यते विद्धः पुमान् बाणैः सुमर्मगैः।
यथा तुदन्ति मर्मस्था ह्यसतां परुषेषवः॥

मानव-हृदय मर्मभेदी बाणोंके प्रहारसे उतने कष्टका अनुभव नहीं करता, जितनी पीड़ा दुर्जनोंकी अप्रिय वाणी पहुँचाती है।

कथयन्ति महत्पुण्यमितिहासमिहोद्धव।
तमहं वर्णयिष्यामि निबोध सुसमाहितः॥

हे उद्धव! इस विषयमें सन्तजन प्राचीन इतिहासका वर्णन सुनाया करते हैं, मैं वही कथा तुम्हें सुनाता हूँ—

एक भिक्षुकने दुष्ट प्रवृत्तिके लोगोंद्वारा अनेक प्रकारसे प्रताड़ित किये जानेपर भी अपने धैर्यको नहीं छोड़ा। उसने अपने पूर्वजन्मोंके कर्मोंका फल समझकर इसे हृदयसे स्वीकार किया। इस व्यथा-कथाको ध्यानसे सुनो।

अवन्तिषु द्विजः कश्चिदासीदाढ्यतमः श्रिया।
वार्तावृत्तिः कदर्यस्तु कामी लुब्धोऽतिकोपनः॥
ज्ञातयोऽतिथयस्तस्य वाङ्मात्रेणापि नार्चिताः।
शून्यावसथ आत्मापि काले कामैरनर्चितः॥

प्राचीनकालकी बात है, उज्जैन नामकी नगरीमें एक ब्राह्मण रहता था। उसने अपने बुद्धि-चातुर्यसे खेती और व्यापारके माध्यमसे विपुल धनराशि एकत्र कर ली थी। वह बहुत ही कंजूस, कामी और लोभी प्रवृत्तिका व्यक्ति था। बात-बातपर क्रोध करना तो जैसे उसका स्वभाव ही बन गया था। वह सदैव ही अपने प्रियजनों एवं अन्योंसे अप्रिय वाणी बोलता था। उसने अपने अतिथियोंका जलपान आदिसे कभी भी आदर-सत्कार नहीं किया। उसके आवासमें कभी भी कोई धार्मिक अनुष्ठान नहीं हुआ। उसके अपने शरीरको भी उसकी धन-सम्पदासे कभी सुख नहीं मिला।

दुःशीलस्य कदर्यस्य द्रुह्यन्ते पुत्रबान्धवाः।
दारा दुहितरो भृत्या विषण्णा नाचरन् प्रियम्॥
तस्यैवं यक्षवित्तस्य च्युतस्योभयलोकतः।
धर्मकामविहीनस्य चुक्रुधुः पञ्चभागिनः॥

उसके कंजूस और अप्रिय व्यवहारके कारण बेटे-बेटी, भाई-बहन, सेवक और उसकी पत्नी आदि समस्त परिजन उससे इतने क्षुब्ध रहते थे कि वे सदैव उसके अनिष्टकी कामना किया करते थे, परिवारमें उसका कोई भी हितैषी नहीं था।

वह लोक और परलोक दोनोंमें हीन दृष्टिसे देखा जाने लगा। वह केवल यक्षोंकी भाँति धनकी रखवाली करता था। उस धनका प्रयोग न तो वह धर्मकार्यमें करता था और न ही उसका भोग करता था। इस प्रकारका जीवनयापन करनेके कारण पंचमहायज्ञके देव विपरीत हो गये। इन देवोंके तिरस्कारसे उसके पूर्वजन्मके पुण्योंके प्रतापसे जो धन एकत्रित हुआ था, वह धीरे-धीरे नष्ट हो गया।

ज्ञातयो जगृहुः किञ्चित् किञ्चिद् दस्यव उद्धव।
दैवतः कालतः किञ्चिद् ब्रह्मबन्धोर्नृपार्थिवात्॥
स एवं द्रविणे नष्टे धर्मकामविवर्जितः।
उपेक्षितश्च स्वजनैश्चिन्तामाप दुरत्ययाम्॥

उस नीच ब्राह्मणका कुछ धन उसके परिजनोंने दबा लिया, कुछ चोर ले गये, कुछ दैवी प्रकोपसे आगमें जलकर नष्ट हो गया। कुछ साधारण मनुष्योंने हड़प लिया और बचा-खुचा सरकारने दण्डके रूपमें

ले लिया। इस प्रकार उसकी सारी सम्पत्ति समाप्त हो गयी। न तो उसने धनसे धर्मकार्य किया और न ही उसका सुख भोगा। धन-समाप्त होनेपर उससे उसके अपने ही विमुख हो गये। अब तो वह सदा ही भयंकर चिन्तासे घिरा रहने लगा। अब उसे संसारके प्रति दुःख-बुद्धिसे वैराग्यका अनुभव होने लगा। जैसे ही उसके मनमें वैराग्यका प्रभाव पड़ने लगा, वह सोचने लगा, जिस धनके लिये उसने रात-दिन परिश्रम किया, वह मेरे किसी काम नहीं आया। यह नितान्त सत्य है कि जो व्यक्ति येन-केन-प्रकारेण केवल धन-संग्रहमें ही लगे रहते हैं, वे उसका धर्म-कार्योंमें उपयोग न कर पानेके कारण नरकमें जाते हैं। मनुष्यका लोभ यशस्वीके यश और विद्वान्के प्रशंसायोग्य गुणोंका भी नाश कर देता है।

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च॥
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्॥

चोरी, हिंसा, असत्य-भाषण, अहंकार, काम, क्रोध, गर्व, अहंकार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्पटता, जूआ और शराब—ये सारे अनर्थ मनुष्योंमें धनके कारण ही होते हैं। इसलिये सुसंस्कारित मनुष्योंको चाहिये कि इन दुर्गुणोंका त्याग कर दें।

भिद्यन्ते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा।
एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः॥
अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः।
त्यजन्त्याशु स्पृधो घ्नन्ति सहसोत्सृज्य सौहृदम्॥

भाई-बन्धु, स्त्री, पुत्र, माता-पिता तथा समस्त सगे-सम्बन्धी—ये सब धनके कारण शत्रु बन जाते हैं। ये सगे-सम्बन्धी धनके कारण आपसी प्रेम-सम्बन्ध भी इस स्तरतक भुला देते हैं कि एक-दूसरेके प्राणोंके भी प्यासे हो जाते हैं और अपने कुकर्मोंसे सर्वनाशतक कर डालते हैं।

देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन् बन्धूंश्च भागिनः।
असंविभज्य चात्मानं यक्षवित्तः पतत्यधः॥
व्यर्थयार्थेहया वित्तं प्रमत्तस्य वयो बलम्।
कुशला येन सिध्यन्ति जरठः किं नु साधये॥

जो मनुष्य देवता, ऋषि, पितर, प्राणी, भाई, परिवारजन और उस धनके भागीदारोंका भाग नहीं देता, वह यक्षके समान धनकी रखवाली करनेवाला अधोगतिको प्राप्त होता है।

उस ब्राह्मणको अब चेतना आयी कि वह अपने कर्तव्यसे विमुख हो गया है। उसने सोचा कि मैंने प्रमादवश अपनी आयु, धन और बल-पौरुष खो दिया, जिस विवेकसे मनुष्य मोक्ष भी प्राप्त कर लेता है, उस शक्तिको धन एकत्रित करनेमें व्यर्थ ही गवाँ दिया। अब वृद्धावस्थामें कौन सहारा देगा।

किं धनैर्धनदैर्वा किं कामैर्वा कामदैरुत।
मृत्युना ग्रस्यमानस्य कर्मभिर्वोत जन्मदैः॥
नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः।
येन नीतो दशामेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः॥
सोऽहं कालावशेषेण शोषयिष्येऽङ्गमात्मनः।
अप्रमत्तोऽखिलस्वार्थे यदि स्यात् सिद्ध आत्मनि॥
तत्र मामनुमोदेरन् देवास्त्रिभुवनेश्वराः।
मुहूर्तेन ब्रह्मलोकं खट्वाङ्गः समसाधयत्॥

यह मानवशरीर कालके गालमें पड़ा हुआ है। इसे धनसे, धन प्रदान करनेवाले देवताओंसे, भोग-वासना पूर्ण करनेवालोंसे तथा बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें डालनेवाले सकाम कर्मोंसे लाभ ही क्या है।

मैं मानता हूँ कि प्रभु मुझपर प्रसन्न हैं, तभी तो उन्होंने मुझे वैराग्य दिया है। सत्य तो यह है कि वैराग्य ही संसार-सागर पार करनेके लिये नौकाके समान है।

अब मैं उस अवस्थामें पहुँच गया हूँ, जहाँ आत्मलाभसे सन्तुष्ट होकर परमार्थ-कार्यमें लग जाऊँ। शेष जीवन तपस्यामें लीन रहूँगा। तीनों लोकोंके स्वामी मेरे इस संकल्पमें मेरी सहायता करें। मैं जानता हूँ, राजा खट्वांगने दो घड़ीमें ही भगवान्की शरणागति प्राप्त कर ली थी।

इत्यभिप्रेत्य मनसा ह्यावन्त्यो द्विजसत्तमः।
उन्मुच्य हृदयग्रन्थीन् शान्तो भिक्षुरभून्मुनिः॥

स चचार महीमेतां संयतात्मेन्द्रियानिलः।
भिक्षार्थं नगरग्रामानसङ्गोऽलक्षितोऽविशत्॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे उद्धव! उज्जैननिवासी उस ब्राह्मणने अहंकारका त्याग कर दिया और शान्त भावसे संन्यास धारण कर लिया। अब उसकी किसी भी भौतिक वस्तुमें आसक्ति न रही। उसने अपने मन-इन्द्रियों और प्राणोंको वशमें कर लिया। अब वह नगर-नगर, ग्राम-ग्राम स्वच्छन्द होकर विचरण करने लगा। इसी बीच वह कहीं भी किसीसे भी भिक्षा माँगकर उदरपूर्ति करने लगा।

धीरे-धीरे उसने वृद्धावस्थामें प्रवेश कर लिया। दुष्ट प्रकृतिके लोग उसे भाँति-भाँतिसे प्रताड़ित करने लगे, कोई उसकी लाठी छीन लेता। कोई भिक्षापात्र छीनकर भाग जाता, कोई उसकी रुद्राक्षकी माला झटक लेता। जब-जब वह भिक्षा माँगकर नदी-किनारे खाने बैठता, तो वे लोग उसपर थूक देते। मौन न तोड़ते देख वे पापीजन उसे मारने-पीटनेसे भी संकोच नहीं करते। कोई उसे चोर कहता, कोई कहता यह भिखारी मौनका दिखावाकर अपना कार्य सिद्ध कर लेता है। कभी-कभी उसे गरमी-सरदीका भौतिक कष्ट भी सहना पड़ता, परंतु वह अपनी साधनाके पथपर सदैव अडिग रहा। इतना सब कुछ होनेपर भी उसके मनमें कोई विकार नहीं होता। वह जान चुका था कि यह सब उसके पूर्वजन्मके कर्मोंका फल है। वह समझ गया था कि प्राचीनकालमें ऋषि-मुनियोंने जिस परमात्मनिष्ठाका आश्रय ग्रहण किया था, मैं भी उसी मार्गपर चलकर इस अज्ञानरूपी सागरको पार कर लूँगा।

श्रीकृष्णने कहा—हे उद्धव! अपनी वृत्तियोंको मुझमें समाहित कर दो और सारी भक्तिका उपयोगकर मनको वशमें करके मुझमें ही स्थित हो जाओ। भली प्रकार समझ लो कि समस्त योग साधनाका यही सार-संग्रह है।

तस्मात् सर्वात्मना तात निगृहाण मनो धिया।
मय्यावेशितया युक्त एतावान् योगसंग्रहः॥

परम ब्रह्म नमस्काराष्टक

(श्रीशरदजी अग्रवाल)

[१]
आदिदेव अनादिदेव देवातीत नमस्कार।
अन्तर्यामी अभयदेव कालातीत नमस्कार।
नमस्कार नमस्कार बारम्बार नमस्कार॥

[२]
आदिनाद अनादिनाद नादातीत ओंकार।
शून्यरूप गुण-अतीत निरंकार निराकार।
नमस्कार नमस्कार बारम्बार नमस्कार॥

[३]
न्यायरूप धर्मरूप सत्यरूप सत्यसार।
दीनबन्धु दिव्यरूप प्रेमरूप प्रेमसार।
नमस्कार नमस्कार बारम्बार नमस्कार॥

[४]
सत्वरूप रजस्वरूप तमस्वरूप गूढ़-अपार।
आदितत्व-नित्यशुद्ध, ज्ञानरूप-तत्वसार।
नमस्कार नमस्कार बारम्बार नमस्कार॥

[५]
दयानिधे दीनरक्ष पक्षहीन धर्मराज।
धर्मरूप कर्ममय सर्वमित्र सर्वनाथ।
नमस्कार नमस्कार बारम्बार नमस्कार॥

[६]
पूर्णकाम कामकोटि, सिन्धु रूपके अपार।
यज्ञरूप योगरूप भोगरूप निर्विकार।
नमस्कार नमस्कार बारम्बार नमस्कार॥

[७]
गूढ़ब्रह्म चिन्मय दिव्यतेजमय प्रकाश।
हे असीम, हे अभय, हे अनन्त, हे विराट।
नमस्कार नमस्कार बारम्बार नमस्कार॥

[८]
हूँ शरण, करो वरण, पुंजभूत हैं विकार।
दु:ख-अतीत, सुख-अतीत, रसस्वरूप हे अपार।
नमस्कार नमस्कार बारम्बार नमस्कार॥

नवधा भक्ति

(श्रीलालजी मिश्र)

नवधा भक्तिका प्रसंग श्रीरामचरितमानसके अरण्य-काण्डमें वर्णित है। भक्तिमती शबरीजी मतंग ऋषिकी शिष्या थीं। उनकी सेवा, सरलता, श्रद्धा एवं भक्तिसे प्रसन्न होकर ऋषिने उन्हें श्रीराम-नाम-मन्त्रकी दीक्षा दी और आश्वस्त किया कि इस नामके जपसे नामी अर्थात् रामकी प्राप्ति होगी। नामी स्वयं चलकर तुम्हारे पास आयेगा। उन्होंने पूछा कि 'महाराज! जिसका ये उत्तम नाम है, उसका परिचय क्या है?' बोले—'बेटी! तुम इस विषयमें ज्यादा मत सोचो, बस नाम-जप करो।'

तदुपरान्त शबरी निरन्तर श्रीराम नाम-जप करने लगी तथा श्रीरामके आनेकी प्रतीक्षा करती रही। कालान्तरमें एक दिन उसकी साधना सफल हुई, उसकी प्रतीक्षाका अवसान हुआ। श्रीराम लक्ष्मणके सहित सीता माताकी खोज करते हुए उनकी कुटियामें पधारे। शबरीने अपने गुरु मतंग ऋषिके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए प्रसन्नता व्यक्त की।

सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाए॥

भगवान् श्रीराम जब शबरीजीके आश्रममें आते हैं, तो भावमयी शबरीजी उनका स्वागत करती हैं, उनके श्रीचरणोंको पखारती हैं, उन्हें आसनपर बैठाती हैं और रसभरे कन्द-मूल-फल लाकर अर्पित करती हैं।

सत्संगमें विनय हो, सत्संगमें सेवा हो, निरहंकारिता हो, तभी वह सफल है। शबरीने विनय एवं निरहंकारितापूर्वक सत्संग किया। कोई वन्दना नहीं की। कोई स्तुति नहीं की। चुप रह गयी। भावावेग इतना है कि वाणी साथ नहीं देती है। तब मौन ही मुखर हो उठता है।

प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥

शबरी बार-बार अपनेको अधम और मन्दमति कहती है, परंतु भगवान् श्रीरामने शबरीको 'भामिनी' शब्दसे अलंकृत किया, जिसका अर्थ है—तेजस्विनी या ज्योतिर्मयी। और कहा—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥

सामान्य रूपसे लोग जाति-पाँति, कुल, धर्म, बड़प्पन, धन, बल, परिवार, गुण और चतुराईके आधारपर सम्बन्धका निर्माण करते हैं, परंतु यदि भक्तिविहीन व्यक्ति है, तो वह जलरहित बादलके सदृश है।

शबरीने कहा—प्रभो! आप केवल भक्तिका नाता मानते हैं, यह बात तो कह दी आपने, लेकिन हमारा नाता भगवान्‌से जुड़े, सम्बन्ध बने, सम्बन्ध गहरा हो, बढ़ता जाय—इसकी कोई प्रक्रिया है क्या? भगवान्‌ने कहा कि प्रक्रिया तो है—

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥

नवधा भक्तिका सामान्य अर्थ नौ प्रकारकी भक्ति होती है। परंतु इस प्रसंगमें नवधाका तात्पर्य नौ चरणों अथवा नौ सोपानोंमें भक्ति है। समग्र भक्तिका उत्तरोत्तर विकास नौ चरणोंमें होता है, जिसमें प्रत्येक क्रमिक सोपान एक-दूसरेसे सम्पृक्त हैं तथा किसी सोपानमें भक्तिका विकास उसके पूर्व सोपानमें भक्तिके विकासके बिना सम्भव नहीं है।

(१) भक्तिका प्रथम सोपान है—***'प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।'***

हमारी चित्तवृत्ति यदि बहिर्मुखताको त्यागकर अन्तर्मुखी हो जाय, ईश्वरकी ओर उन्मुख हो जाय, अपनी आत्माकी तरफ उन्मुख हो जाय, जीवनका लक्ष्य आध्यात्मिक हो जाय तो जीवनकी दिशा ही बदल जायगी। ऐसा केवल तभी सम्भव हो पायेगा, जब हम सत्संगतिका आश्रय लें। सन्तोंकी संगति—उनके उपदेशोंका श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन करना भक्तिकी पहली साधना होती है, यही प्रवेशद्वार है भक्तिकी साधनाका। सन्तों एवं महापुरुषोंकी बार-बार संगति मिलनेसे चित्तवृत्ति अन्तर्मुखी होती है, अपनी आत्माके पास खिंचती हुई लगने लगती है। वहीं कामी व्यक्तिकी संगति हमारे भीतर कामना जगाती है—

संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।

यदि किसीके जीवनमें सुमति है, सत्कीर्ति है, सद्‌गति है, वैभव है, भलाई है, तो तुलसीदासजी कहते हैं कि आप ध्यानपूर्वक देख लेना कि उसके जीवनमें कोई सत्पुरुष अवश्य है—***'सो जानब सतसंग प्रभाऊ।'***

इस प्रकार सत्संग प्राथमिक भक्ति है।

(२) दूसरी भक्ति है—*'दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥'*

सत्संगके पश्चात् क्रममें हमारे हृदयमें भगवान्‌की छविका निर्माण हो गया। ऐसी मनोहर छवि बनी कि ईश्वर अपना प्रिय और सम्बन्धी मालूम पड़ने लगा। अन्तःकरणमें केवल राग-द्वेष, अहंकार-कामना, त्रिगुण ही नहीं भरे हैं, बल्कि इसमें ईश्वरका भी निवास-स्थान बताया गया है। गीता (१८।६१)-में कहा गया है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

यह वही अन्तर्यामी ईश्वर है, जिसे वेदने कहा कि आपके सखा-जैसा है। भागवतमें उसे अविज्ञात सखा बताया गया है। एक बार उस अन्तर्यामीका, उस सबसे निकट सखाका पता चल जाय, उसके गूढ़ चरित्रका परिचय मिल जाय तो उसकी लीलाके बारेमें सुननेमें आनन्द आने लगता है। भगवान् कहते हैं, 'मेरी कथाके अलग-अलग प्रसंग सुननेसे मेरे प्रति प्रेम बढ़ता है।' इसका दूसरा अर्थ निकला कि अन्य कथा-प्रसंगोंमें विरक्ति होने लगती है—

अन्येषां कथाप्रसंगे रतिर्न भवति विरतिर्भवतीत्यर्थः।

सत्संगके द्वारा लक्ष्य बदला, दिशा बदली, चित्तवृत्ति प्रभुकी ओर मुड़ गयी और शनैः-शनैः प्रबल परिवर्तन जीवनमें आया कि लोकचर्चा और लोगोंके चरित्र कहनेमें और सुननेमें जो थोड़ा-बहुत आनन्द मिलता था, वह अब अच्छा नहीं लगता है। जहाँ भगवान्‌की कथा चल रही हो, वहाँ मन रमने लगता है। इसलिये—*'दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।'*

(३) *गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान*—यह भक्तिके चरणबद्ध विकासका तीसरा क्रम है। जब व्यक्ति अपनी साधनामें आगे बढ़ता है, तब उसे भगवान्‌का चरित्र सुननेमें आनन्द आने लगता है और उसे जिज्ञासा होने लगती है। उस जिज्ञासाके निवारणके लिये एक गुरुकी आवश्यकता होती है। अर्जुनको आवश्यकता प्रतीत हुई, उसने श्रीकृष्णको गुरु बनाया।

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।

(गीता २।७)

जिज्ञासासे प्रेरित होकर ज्ञान प्राप्त करनेके लिये व्यक्ति गुरुके पास जाता है। गुरुके पास जाना, उसकी सेवा करना और सेवासे प्रसन्न करके उससे प्रश्न पूछना—अपनी जिज्ञासा बताना।

तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

(गीता ४।३४)

भगवान्‌ने शबरीसे कहा—'शबरीजी! अभिमानशून्य होकर गुरुदेवके चरणोंकी सेवा करना मेरी तीसरी भक्ति है।' शबरीजीका जीवन तो गुरु-सेवामें ही बीता था, वस्तुतः नवधा भक्तिका उपदेश तो शबरीजीको निमित्त बनाकर मानवमात्रके कल्याणके लिये किया गया है। गुरुकी महिमा परम्परासे भी बहुत अधिक मानी जाती रही है। शास्त्रोंमें गुरुको ब्रह्मा, विष्णु और शिवका रूप दिया गया है। गुरुकी सेवा तो करनी ही चाहिये, परंतु इसके साथ जो अमान शब्द जुड़ा है, वह महत्त्वपूर्ण है—अर्थात् अभिमानशून्य होकर गुरुकी सेवा करना; क्योंकि अमान सेवा ही वास्तविक सेवा होती है।

(४) *चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥*

जो व्यक्ति कपट छोड़कर मेरे गुणोंका गायन करता है, वह अपने जीवनमें भक्तिके चौथे सोपानपर चढ़ जाता है।

साधक कई प्रकारसे गुणगान कर सकता है। साधकने चूँकि गुरुमुखसे श्रवण कर लिया, विनयपूर्वक श्रवण किया, सेवापूर्वक श्रवण किया, निरभिमान होकर श्रवण किया, जिज्ञासु होकर श्रवण किया, तो अब अगला जो सोपान है, वह मननका है और मननमें प्रवचन शामिल है, जिसमें विचारोंका आदान-प्रदान होता है। इसलिये प्रवचन भी एक साधना है। प्रवचन साधकके लिये एक साधना है। हमारे शास्त्र कहते हैं—**'एषा वाङ्मयी सेवा।'**

प्रवचन अथवा प्रभुका गुणगान एक शब्दमयी पूजा है। ये शब्दके पुष्प मैं आपके चरणोंमें रखता हूँ। दुनिया उसका सुगन्ध ले तो अच्छा ही है।

कपटका अर्थ होता है—अन्यथा प्रदर्शन। जो वस्तु-स्थिति है, उसे छिपाना और उसके बजाय कुछ और दिखाना।

(५) *'मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥'*

दृढ़ विश्वासके साथ मेरे मन्त्रका जप करना, भजन

करना—यह मेरी भक्तिका पंचम सोपान है। अब साधकके जीवनमें जपकी प्रधानता आ गयी। प्रधानताका मतलब यह है कि इसके पहले भक्तिके चारों सोपान इसमें सन्निहित हैं। पाँचवें क्रममें निवृत्ति बढ़ी। प्रवचन, श्रवण, सत्संग सब होता है, लेकिन जप बढ़ गया।

वेदमें जो भक्ति बतायी गयी है, वह पाँचवीं है। उसे वैदिक भक्ति कहते हैं, अर्थात् भक्तिमें वैदिक विधिकी प्रधानता आ गयी। जपकी प्रधानता आ गयी। मन्त्रके दो अर्थ होते हैं—**मननात् त्रायते इति मन्त्रः**—मन्त्र एक ऐसी चीज है, जिसका मनन करनेसे हमारा परित्राण होता है और दूसरा मन्त्र होता है जप करनेके लिये। मन्त्र-जप करनेसे प्राणमें एक लय बनती है। मन्त्रमें जो छन्द है, मन्त्रमें जो लय है, उसी लयसे प्राण चलने लगता है। प्राण माने वायु नहीं। प्राण माने जीवन-शक्ति। लय प्राणके साथ संयुक्त होती है, जिसका शारीरिक संरचनापर बहुत प्रभाव पड़ता है। यह एक वैज्ञानिक साधना है। यदि कोई गहन साधना करना चाहता है। तन्मय होकर साधना करना चाहता है, तब उसको प्रभुके ऊपर दृढ़ विश्वास रखना होगा। प्रभुका वचन है कि—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

(६) भक्तिके विकासके छठे सोपानमें भगवान् श्रीराम शबरीसे कहते हैं—***'छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥'***

छठे सोपानतक पहुँचते-पहुँचते भक्तकी स्थिति ऐसी ऊँची हो जाती है कि भक्तकी रहनीको ही हम भक्ति बोलते हैं। अब भक्तकी रहनीमें जो साफ दिखायी देता है वह है—दम। इन्द्रियोंके निग्रह (संयमन)-को दम कहते हैं। वेदान्तमें आता है—'**मनोनिग्रहः शमः इन्द्रियनिग्रहः दमः**।' दम कोई तात्कालिक अभ्यास नहीं है, एक सतत अभ्यास है, ताकि हमारा स्वभाव बन जाय। इन्द्रियाँ मनकी अनुगामी होती हैं। मन जो चाहता है, वही हमारी इन्द्रियाँ करती हैं। मनुष्यकी सभी इन्द्रियाँ भोगोन्मुख हैं और भोगकी कोई सीमा नहीं है। इसलिये आवश्यक है कि जीवनमें नियंत्रित रूपसे ही भोगोंको स्वीकार किया जाय। ईश्वरको समर्पण करके, उनके प्रसादके रूपमें, इन सबको स्वीकार करना कल्याणकारी हो सकता है।

तुम्हहिं निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं॥

(रा०च०मा० २। १२९। २)

भगवान् दमके साथ शील जोड़ते हैं—***'छठ दम सील।'*** शीलका अर्थ है—चित्तकी कोमलता। दूसरेकी भावनाका ध्यान करनेवाला, दूसरोंके दुःखको समझकर उसके अनुरूप आचरण करनेवाला व्यक्ति शीलवान् कहा जाता है। बहुधा 'दम' वाले व्यक्ति दूसरोंकी भावनाका ध्यान नहीं रखते। शीलको मानसमें बड़ा प्रशंसनीय गुण माना गया है। भगवान् रामके जिस गुणपर संसारके सभी लोग मुग्ध हैं—वह उनका शील ही है। उन्हें 'शीलसिन्धु' कहा जाता है।

अब आगे आता है—***'बिरति बहु करमा।'*** माने बहुत कर्मोंसे वैराग्य। वैदिक अध्यात्मशास्त्रमें दो मार्ग बताये गये हैं—प्रवृत्ति और निवृत्तिमार्ग। रजोगुणकी प्रधानतासे प्रवृत्तिमार्ग होता है। केवल प्रवृत्तिसे कर्मबाहुल्य बढ़ता जायगा। उससे कुछ लाभ नहीं होगा, बल्कि वह पतनका कारण बन जायगा। इसलिये प्रवृत्तिमें धर्म और प्रभु-समर्पणका संयोग हो, ताकि जीवनमें निवृत्तिका प्रवेश हो सके। इसके लिये आवश्यक है कि अपने समस्त कर्मोंको ईश्वरको अर्पित कर दिया जाय।

(७) ***'सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥'***

भक्तिके क्रमिक विकासके क्रममें साधक उत्तरोत्तर अन्तर्मुखी होता जाता है। सातवें चरणमें 'देखना' ही भक्ति है। कैसा देखना? भगवान् कहते हैं—सम और मोहिमय। सम होना और जगत्को ईश्वरमय देखना—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

समस्त जगत् ईश्वरपर अध्यस्त है। वस्तुतः (ज्ञान हो जानेपर) जगत्का कोई अस्तित्व नहीं है, केवल प्रतीतिमात्र है।

सातवें क्रममें, धीरे-धीरे साधनाका सुपरिणाम चित्तपर प्रकट हुआ और चित्तमें समता आ गयी।

चित्तकी समता कई प्रकारकी होती है। एक समता होती है ज्ञानी पुरुषकी। दूसरी समता होती है, जो ज्ञानी होते हुए सन्त भी हैं। एक समता होती है, तीव्र साधककी और एक समता होती है—धर्मनिष्ठकी।

धर्मनिष्ठकी समता होती है उसकी निष्पक्षता। माता-पिता अपने बच्चोंके लिये तथा जज अपने मुकदमेके लिये निष्पक्ष रूपसे आचरण करता है। यही निष्पक्षता उनकी समता है। दूसरी समता तीव्र साधककी होती है। जो बिलकुल निरत है। कौन क्या करता है, उस तरफ उसका ध्यान ही नहीं जाता है। उसे समय ही नहीं है, कि कोई उसके बारेमें क्या सोच रहा है? यह भी एक समता है।

ज्ञानीकी समता क्या है? वह तो विद्या-विनयसम्पन्न ब्राह्मणमें, गायमें, हाथीमें, श्वान (कुत्ते)-में तथा चाण्डालमें समान रूपसे एक ही आत्माका दर्शन करता है।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

(गीता ५। १८)

परंतु सन्तका चित्त कोमल होता है, उसकी समता है—**सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥**

इस प्रकार जब चित्तमें समता आयी, तो साधक जगत्‌को प्रभुमय देखने लगता है। इसके बाद साधक इस स्थितिमें पहुँच जाता है कि ***'मोते संत अधिक करि लेखा।'*** वह भगवान्‌से भी अधिक महत्त्वपूर्ण सन्तको मानने लगता है—

गुरु गोबिन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पायँ।
बलिहारी गुरु आपने गोबिंद दियो बताय॥

(८) *आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥*

आठवें सोपानपर श्रीराम कहते हैं कि साधकका मन ऐसा हो जाता है कि ***'जथा लाभ संतोषा।'*** जो मिलता है, उसमें सन्तुष्ट है। सन्तोष मन मारनेका नाम नहीं है। सन्तोषका अर्थ होता है—**सः तृप्तः अस्ति।**

इस सोपानके भक्तके लिये आगे कहते हैं कि ***'सपनेहुँ नहि देखइ परदोषा।'*** अर्थात् स्वप्नमें भी उसे दूसरोंके दोष दिखायी नहीं देते; क्योंकि दूसरोंके दोष देखनेमें उसकी रुचि नहीं रहती। जब व्यक्ति अपनेमें रमण करता है, तब उसे दूसरेके दोष देखनेका समय ही नहीं मिलता। आनन्द भी नहीं आता। आप इतने मग्न रहें, अपने भीतर आनन्दसे इतना परिपूर्ण रहें कि दूसरेके दोष-गुण देखनेमें कोई रुचि ही न रहे।

(९) नवम सोपान भक्तिका अन्तिम सोपान है और बहुत गम्भीर है। भगवान्‌ने कहा—***'नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥'***

नवम भक्ति—सरलता है। सरलताका सीधा-सा अर्थ है—जैसा भीतर वैसा बाहर। बिलकुल पारदर्शिता हो। उसको लोग बोलते हैं कि बड़े सरल हैं। इसका उलटा चतुर होता है। चतुराई ही हमारी मूर्खता है। आजका चतुर होकर कोई सुखी नहीं हुआ। उसके सगे, उससे सहज प्रेम नहीं कर पाते। उसका कोई सच्चा दोस्त नहीं बन सकता। जीवनमें चतुराई बस उतनी ही चाहिये, जितनेमें दूसरोंकी चतुरता समझमें आ जाय और उससे बचकर रह सके। जीवनमें रस लेना है, तो सरलता चाहिये।

'मम भरोस हियँ हरष न दीना'—ऐसे साधकके चित्तमें भगवान् रहते हैं। इतना प्रबल आलम्बन है उसे भगवान्‌का कि उसके पास न हर्ष आता है, न दैन्य आता है। यह भक्तिकी पूर्णतम स्थिति और अन्तिम सोपान है।

शबरीजी स्वयं सिद्ध साधिका थीं, भक्तिके सभी गूढ़ तत्त्व उन्हें ज्ञात थे। उनका प्रश्न भविष्यके साधकोंके लिये था। भगवान्‌ने स्वयं शबरीजीकी प्रशंसा करते हुए कहा—***'सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।'***

भगवान् आगे कहते हैं—योगियों और तपस्वियोंको भी जो गति दुर्लभ है, वह तुम्हें प्राप्त है। वह तुम्हें, तुम्हारी भक्तिसे सहजमें ही प्राप्त है।

यह स्थिति बहुत ही विलक्षण एवं हृदयंगम करनेयोग्य है। भगवान् यह भी कहते हैं कि मेरे दर्शनका अनुपम फल यह है कि जीवको अपने स्वरूपका ज्ञान हो जाय। इस प्रकार भगवान्‌ने शबरीजीके माध्यमसे अपने सभी भक्तोंको भक्तिका उपदेश दिया।

तीर्थ-दर्शन—

शिवपूजनकी महनीय भूमि मगध

(डॉ० राकेश कुमार सिन्हा 'रवि', एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०)

भारतीय सांस्कृतिक परम्पराका मेरुदण्ड यहाँकी धार्मिक आस्था और उसकी सुदीर्घ परम्परा है, जिसमें मगधकी भूमि आदि-अनादिकालसे धर्म एवं दर्शनकी प्रमुख स्थली रही है। वैसे तो इस पुण्यमयी भूमिमें पंचदेवोंके अतिरिक्त कोटि-कोटि देवताओंकी पूजा की जाती है, जिसमें भोलेनाथजीका सर्वप्रमुख स्थान है। वेद-पुराणोंमें उल्लिखित मगध वही महिमामयी, गरिमामयी धरती है, जहाँ देवाधिदेव सृष्टिके उदयकालसे आजतक निर्बाध रूपमें पूजित हैं।

मगध प्राचीन भारतके सोलह महाजनपदोंमेंसे एक था। आधुनिक पटना तथा गया जिला इसमें शामिल थे। महाभारत-कालमें जरासन्ध यहाँका प्रसिद्ध राजा था। गिरिव्रज उसकी राजधानी थी, जिसे आज राजगीर कहा जाता है। भगवान् बुद्धके समयमें बिम्बसार यहाँके राजा थे। महानन्द यहींका राजा था, जिसका उच्छेदकर चाणक्यने मौर्यवंशकी स्थापना करायी थी। मगध महाजनपदकी सीमा उत्तरमें गंगासे दक्षिणमें विन्ध्यपर्वततक, पूर्वमें चम्पासे पश्चिममें सोन नदीतक विस्तृत थी। यह दक्षिणी बिहारमें स्थित था। मगधक्षेत्रके अन्तर्गत बिहारके जिन जनपदोंका नाम लिया जाता है, उनमें गया, नवादा, जहानाबाद, औरंगाबाद, नालन्दा, अरवल, शेखपुरा और पटनाकी गणना की जाती है। प्रस्तुत लेख इसी क्षेत्रकी शिवपूजनकी परम्परापर आधारित है।

आज मगधकी महत्ता भले ही कुछ रूप, कुछ नामसे, हो पर यह आकाट्य सत्य है कि अखिल विश्वमें मगध ही वह महिमामय स्थान है, जहाँ न सिर्फ राजा-महाराजाओं, सेठ-साहूकारों एवं आमजनोंने शिवलिंगकी स्थापना की, वरन् स्वयं देवताओंने भी इस धरतीपर देवाधिदेवका नमन-पूजनकर उनके स्थापन एवं देवालय-विकासमें अप्रतिम योगदान दिया।

मगधमें प्रभु श्रीरामके आगमनका विवरण 'आनन्द रामायण'के यात्राकाण्डमें मिलता है। यात्राके क्रममें प्रभु श्रीराम च्यवनाश्रम आये। यहाँ उन्होंने स्नान किया और मुनिके दर्शन किये तथा रामेश्वर एवं रामतीर्थकी स्थापना की—'**रामतीर्थं च रामेशं चकार तत्र राघवः ॥**' (६ । ६२)

गयापालमूलदर्पणके अनुसार भगवान् श्रीरामके चरण इस धरतीपर पड़े थे और उन्होंने इस क्षेत्रमें 'मद्येश्वरनाथ' एवं देवकुण्डमें 'दूधेश्वरनाथ' का भी उद्धार किया था। तदनन्तर उन्होंने पितृश्राद्धके लिये इसी मार्गसे मोक्षतीर्थ गया आकर रामशिला पर्वतपर 'पातालेश्वर-महादेव' का स्थापन एवं प्रथम पूजनकर एक आदर्श स्थापित किया। महाभारतमें इस तथ्यका स्पष्ट रेखांकन है कि महाभारत कालमें पाण्डव-बन्धुओंने धर्मारण्यक्षेत्रकी यात्रा की, जिसकी पहचान बोधगयामें उत्तर पश्चिम दोआब भूमिके रूपमें की जाती है, जहाँ निरंजना और मोहाने नामधारी दो पर्वतीय जलधाराओंमें गुप्त सरस्वतीका संगम हुआ है, यहीं पितृतोया फल्गुका उद्गम होता है। इसी भूमिपर पाण्डवोंने कुल पाँच स्थानोंपर शिवशंकरका पूजन किया, जिसमें धर्मारण्यक्षेत्रके धर्मेश्वर महादेव एवं बसाढ़ीके विशाल एकमुखी महादेवके साथ गयाके कपिलेश्वर महादेवकी गणना उत्तमोत्तम शैवतीर्थके रूपमें की जाती है।

राजा जरासंधद्वारा राजगीरके वैभारपर्वतपर और बाणासुरद्वारा बराबर-पर्वतपर स्थापित शिवमन्दिर मगधके प्राचीनतम शिवपूजन-केन्द्र हैं। बाणासुरकी पुत्रीद्वारा भी यहाँ तीन स्थानपर शिवलिंग-स्थापन किया गया है, जिनके नाम पंचशिव (बेलागंज), उषेश्वरनाथ (ढिबरा) एवं कोटेश्वरनाथ (मेन) हैं—इन तीनोंकी स्थापना महासुन्दरी उषाने की थी, जो बाणासुरकी शिवभक्ता पुत्री थी। लोमश ऋषिने लोमेश्वर महादेव (बराबर), शृंगी ऋषिने शृंगेश्वर महादेव, कश्यप ऋषिने कश्यपेश्वर महादेव, तो दुर्वासा मुनिने भ्रुरणाहा क्षेत्रमें शिवलिंग स्थापित किये, जिन्हें आज इतने वर्षों बाद भी देखा जा सकता है।

ऐतिहासिक युगमें भी यहाँ शिवपूजनकी परम्परा

बनी रही और तथागत भगवान् बुद्धके जमानेमें यहाँ स्थान-स्थानपर देवालय थे। बादमें मगधमें ऐसे कितने ही पूजा-स्थलोंका उदय एवं विकास हुआ, जहाँ मनौती स्तूपके विभिन्न आकार-प्रकारको शिवलिंग मानकर उन्हें शिवशंकरकी भाँति पूजा जाने लगा और आज भी सम्पूर्ण मगधमें ऐसे कुछ शिव-मन्दिर हैं, जहाँ मनौती स्तूप ही शिवलिंगके रूपमें पूजित है।

सम्पूर्ण देशमें गुप्तकालसे मन्दिरनिर्माणका जो अविरल क्रम प्रारम्भ हुआ, वह बादमें कितने ही वर्षोंतक जारी रहा और इसी क्रममें मगधमें भी स्थान-स्थानपर शिवालय बने। इत्सिंगके विवरण स्पष्ट करते हैं कि नालन्दासे ४० कि०मी० की दूरीपर मृगशिखा वनमें एक विशाल शिवालय था। यह जानकारीकी बात है कि नालन्दाके राजगीरसे सटे पाँच वन आज भी हैं। मगधमें शिव-मन्दिर-स्थापनमें नरसिंहगुप्त एवं बालादित्यगुप्तका नाम आता है। गुप्तनरेश आदित्यसेनने गयाक्षेत्रमें शिवालय बनवाये एवं अपनी राजधानी अपसढ (नवादा)-में पुरातन शिव-मन्दिरका नवसंस्कार किया तो उनकी पत्नी कोणदेवीने देवघरके वैद्यनाथतीर्थके राजेश्वर महादेव मन्दिर-निर्माणमें अमूल्य योगदान किया।

इसके बाद भी मगधक्षेत्रमें शिवमन्दिर-निर्माणका क्रम जारी रहा, पर पालकालमें यहाँ एकसे बढ़कर एक शिवालयोंकी स्थापना हुई। पालनरेश धर्मपाल, देवपाल एवं विग्रहपालने मगधक्षेत्रमें कुल मिलाकर दर्जनसे अधिक मन्दिरोंका नवउद्धार किया। इसमें राजा धर्मपालके शासनकालके २१वें वर्षमें बोधगयामें धर्मेश्वर महादेवकी स्थापनाके अभिलेखीय प्रमाण हैं, तो फल्गुतटपर पिता महेश्वरका प्रथम संस्कार भी इसी जमानेमें हुआ। इस कालमें अन्य देवालयोंमें बैकुण्ठपुरका गौरीशंकर, बाढ़का उमानाथ, चोवारका जटाशंकर, तपोवनका कपिलेश्वर, मीरा बिगहाका अन्नपूर्णेश्वर, उतरेणका सोमेश्वरनाथ, पोगरका एकादश रुद्र, मनौराका शिवस्थान, उमगाका शिवालय, फतेहपुरका संडेश्वरनाथ, खनमाँका शिवालय, धराउत शिव-मन्दिर आदि प्रमुख हैं।

राजा पुष्पदन्तकी राजधानी पोगर (औरंगाबाद)-में एकादश शिव मन्दिरकी अपनी महत्ता है तो मगधके राजे-रजवाड़ोंने भी शिवालय-निर्माणमें अपना अमूल्य योगदान दिया। टिकारी इस्टेटने दो दर्जनसे अधिक शिवालय बनवाये, जिनमें फतेहपुरका विशाल शिवाला देखनेयोग्य है। सम्पूर्ण मगध ही नहीं, पूरे देशमें उसकी गणना की जाती है, जो गया से ३४ कि०मी० की दूरीपर है। देव राजवंश बुधौली इस्टेट, फतुहा इस्टेट, हथुआ राज, मकसूदपुर इस्टेट आदिके बनवाये गये शिवालय आज भी देखे जा सकते हैं, तो गौरांग महाप्रभु चैतन्यके एकादश रुद्रेश्वर—जंगमेश्वरके दर्शनसे उस युगकी याद ताजा हो जाती है। इसके निर्माणमें मध्यकालीन शैलीका बहुतायत प्रयोग हुआ है। राजा मानसिंहके नौ वर्षीय गया-प्रवासके समय भी यहाँ पाँच विशाल मन्दिर बनाये जानेका अपना विशेष महत्त्व है, इसमें नीलकंठेश्वर महादेव (मानपुर) आज भी शानके साथ खड़ा है। इन्हींके जमानेमें गयाके चारों पीढ़ीका शिवमन्दिर दुरुस्त हुआ, जिनके नाम हैं वृद्धपरपितामहेश्वर (अक्षयवट), परपितामहेश्वर (लखनपुरा), पितामहेश्वर (फल्गुतट) एवं मार्कण्डेय शिवमन्दिर जो गयाके सप्त सरोवरोंमें एक वैतरणीके सम्मुख है।

सम्पूर्ण मगधक्षेत्रकी यह खासियत रही है कि यहाँ दो इंचसे लेकर बारह फीटतकके ऊँचाईके शिवलिंग स्थापित हैं। यहाँके प्रायशः शिवलिंग पालकालीन हैं, पर गुप्तोत्तर काल और मध्ययुगीन शिवलिंग भी यहाँके देवालयोंमें स्थापित हैं। जहाँतक पालकालीन कृतिका सवाल है, तो यह तीनों कालका प्रतिनिधित्व करता है, जिसे पूर्वकाल, मध्यकाल एवं उत्तरकालके रूपमें रेखांकित किया जाता है। एकमुखी शिवलिंग, पंचमुख शिव, उमाशंकर एवं वाहन नन्दीके विविध रूपमें यहाँ दर्शन होते हैं और सच कहें तो शिवपूजनकी जाग्रत् भूमि है मगध, जहाँ प्राचीन कालसे शैव सत्ता निर्बाध रूपसे विद्यमान है।

ऐसे तो वर्षभर प्रभु भोलेनाथ यहाँ पूजे जाते हैं, पर महाशिवरात्रिकी बात निराली होती है, तब इन शिव-मन्दिरोंको दुल्हनकी भाँति सजाया जाता है और भक्तोंके आगमनसे सभी मन्दिरोंमें विशाल मेला लग जाता है।

संत-चरित—

हिमाचलकी साध्वी सत्यादेवी

(प्रो० पूजा वशिष्टजी)

भारतभूमिपर अनेक ऋषि-मुनियों, संत-साध्वियोंका जन्म हुआ है। पुरुष-शरीरमें जन्म लेकर अनेक सन्त-महात्मा अध्यात्ममार्गपर अपने पैरोंके निशान छोड़ गये हैं, परंतु स्त्रीयोनिमें जन्म लेकर भी अध्यात्मपथपर अग्रसर होने तथा जनमानसमें भक्ति-चेतना पैदा करनेके उदाहरण विरले ही मिलते हैं। प्राचीन भारतमें मैत्रेयी, गार्गी, घोषा-जैसी अनेक विदुषी ज्ञानवान् स्त्रियाँ रहीं, जो आज भी नारी जातिके लिये प्रेरणास्रोत हैं। कृष्णप्रेमपर सर्वस्व अर्पण करनेवाली मीराबाईकी गणना भक्तोंकी सर्वोच्च कोटिमें की जाती है। इन्हीं मीराबाईको अपना आदर्श मानकर, जीवनभर उन्हींका अनुसरण करनेवाली साध्वी भक्त सत्यादेवीका नाम देव-भूमि हिमाचलमें अपार प्रेम तथा श्रद्धाके साथ लिया जाता है।

सत्यादेवीका जन्म सन् १९२० ई०में हिमाचल प्रदेश जिला सोलनके गाँव जगातखानेमें प्रसिद्ध व्यापारी श्रीरत्नचन्द सूदके घरमें हुआ। इनकी माताका नाम श्रीमती रेणुकादेवी था। श्रीरत्नचन्द सूदकी छः सन्तानोंमें सत्यादेवी सबसे बड़ी थीं। सत्यादेवीके तीन भाई श्रीओम प्रकाश सूद, श्रीधर्मप्रकाश सूद तथा श्रीदेसराज सूद थे। इनकी दो बहनें श्रीमती विमलादेवी सूद और सुरिन्द्रादेवी सूद थीं।

बचपनमें ही सत्यादेवीजीके सिरसे माँका साया उठ गया और इनके लालन-पालनकी जिम्मेदारी इनकी बुआ श्रीमती सरस्वतीदेवीके ऊपर आ गयी। कुछ समय बाद यह परिवार काँगड़ा जिलेके ज्वालामुखी नगरमें आकर बस गया। घरमें शिवभक्ति और राम-कृष्णभक्तिका वातावरण था। रत्नचन्द सूद रामायणका प्रतिदिन पाठ करते थे। बचपनमें ही सत्यादेवीकी लगन भगवान् कृष्णसे लग गयी और वह निरन्तर कृष्णभक्तिमें मग्न रहने लगी। कक्षा पाँचतककी शिक्षा विधिवत् ग्रहण की। रामायण, गीता, श्रीमद्भागवतका अध्ययन नियमित तौरपर करने लगीं। सत्यादेवीका मन दुनियादारीके कामोंमें नहीं लगता था। कृष्ण नाम-स्मरण करते हुए अकेले बैठकर चिन्तन करना इनका स्वभाव था।

सत्यादेवीकी १२-१३ सालकी उम्र होनेपर पिता रत्नचन्द सूदको इनके विवाहकी चिन्ता होने लगी। लगभग १५ वर्षकी आयुमें सत्यादेवीका रिश्ता छोटे शिमलेके एक व्यवसायी-परिवारके होनहार पुत्र श्रीरोशनलालके साथ तय कर दिया गया। परंतु सत्यादेवीको विवाह और गृहस्थीमें कोई रुचि नहीं थी। सत्यादेवीने अपने पितासे अपना विवाह न करनेका बहुत आग्रह किया। उन्होंने बार-बार कहा कि उनका जन्म तो कृष्णको पानेके लिये हुआ है, परंतु पिताने इन बातोंको बच्चीका बचपना समझते हुए इनपर कोई ध्यान नहीं दिया और सत्यादेवीका विवाह श्रीरोशनलाल सूदके साथ कर दिया।

विवाहके बाद भी सत्यादेवीके स्वभाव, व्यवहार और दिनचर्यामें कोई अन्तर नहीं आया। पहलेकी तरह ही वह कृष्ण-साधना, कृष्ण-भक्ति, कृष्ण-भजनमें लगी रहतीं। रोशनलाल सूदका संयुक्त परिवार था। जल्दी ही परिवारके सभी सदस्योंको यह बात समझमें आ गयी कि सत्यादेवीकी गृहस्थ-जीवनमें कोई दिलचस्पी नहीं है। तब रोशनलाल सूदके पारिवारिक सदस्योंने सत्यादेवीके पिता रत्नचन्द सूदसे इस विषयपर बातचीत की। काफी विचार-विमर्शके बाद दोनों पक्षोंमें यह सहमति बन गयी कि सत्यादेवीको गृहस्थीके बन्धनोंसे मुक्त कर दिया जाय और कृष्ण-साधना, कृष्ण-भक्तिके लिये पूरा अवसर दिया जाय। तब सत्यादेवीकी छोटी बहन सुरिन्द्रादेवी सूदसे श्रीरोशनलालका विवाह कर दिया गया और सत्या देवीको पिता रत्नचन्द सूद अपने पास वापस ले आये।

हरिद्वारमें सप्त सरोवर, भूमानिकेतन आश्रममें निवास करनेवाले दण्डी स्वामी भूमानन्द सरस्वती लाला रत्नचन्द सूदके गुरु थे। सत्यादेवीने दण्डी स्वामी भूमानन्द

सरस्वतीसे दीक्षा ग्रहण की और यहींसे उनकी आध्यात्मिक यात्रा शुरू हुई। सत्याने कृष्णलीलाभूमि वृन्दावनसे कभी न टूटनेवाला नाता जोड़ लिया। भूमानिकेतन सप्त सरोवर, आश्रम हरिद्वारमें रहकर धर्मग्रन्थोंका अध्ययन किया और जीवन पूरी तरहसे कृष्णभक्तिको समर्पित कर दिया।

शिक्षा-दीक्षा पूरी होनेपर स्वामी भूमानन्द सरस्वतीने सत्यादेवीके पिता रत्नचन्द सूदको आज्ञा दी कि माँ बज्रेश्वरी देवीकी पावन भूमि काँगड़ा, हिमाचल प्रदेशमें सत्यादेवीके लिये आश्रमका निर्माण किया जाय। गुरु-आज्ञाको शिरोधार्य करते हुए रत्नचन्दने काँगड़ामें एस०डी०एम० दफ्तरके निकट, होशियारपुर रोडपर 'सत्संग-गीता-भवन' का निर्माण करवाया, जिसमें कृष्ण मन्दिर, शिवमन्दिर, दुर्गामन्दिर, हनुमान्-मन्दिरकी स्थापना की गयी। सत्यादेवीने महिलाओंके लिये सिलाई प्रशिक्षण केन्द्र शुरू कर दिया और सिलाई सिखाकर अपना जीवनयापन करने लगीं। जल्दी ही उनकी ख्याति दूर-दूरतक फैल गयी तथा सैकड़ों स्त्रियाँ आश्रममें आने लगीं। प्रतिदिन भगवन्नाम-संकीर्तन सत्संग होने लगा, जिसमें भगवान् कृष्णकी बाल-लीलाओंका नृत्य तथा अभिनय विशेष उल्लेखनीय है।

धीरे-धीरे काँगड़ाकी पावन धरतीपर 'सत्संग-गीता-भवन' एक तीर्थस्थलके रूपमें उभरने लगा और दूर-दूरसे लोग यहाँ आने लगे। काँगड़ाके कुछ सम्भ्रान्त परिवार, जिनमें महाजन परिवारोंका नाम प्रमुख है; सत्यादेवीके श्रद्धालु और शिष्य बने। काँगड़ाके व्यापारी, सरकारी अफसर तथा कर्मचारी वर्गके सनातनी परिवार नियमित रूपसे आश्रम काँगड़ामें अपनी श्रद्धाके पुष्प अर्पित करने आते थे। चौमासेके दिनोंमें हिमाचल तथा निकटवर्ती क्षेत्रोंके अनेक सन्त वहाँ निवास करते तथा सत्संग करते थे। रामायण, गीता, श्रीमद्भागवतके पाठ निरन्तर चलते। सत्यादेवीकी अनेक शिष्याओंने अपने-अपने इलाकोंमें संकीर्तन-मण्डलों तथा सुन्दरकाण्ड-मण्डलियोंका गठन किया और सनातन धर्मके प्रचार-प्रसारमें अपना योगदान दिया। हिमाचलके दूर-दराज क्षेत्रोंसे भी नर-नारी सत्यादेवीके प्रवचनोंको सुननेके लिये आते थे और सत्संगरूपी गंगामें डुबकी लगाकर आनन्दित होते थे।

प्रवचनों तथा सत्संगके द्वारा सत्यादेवीने भक्ति-मार्गपर अपने हजारों शिष्योंका पथ-प्रदर्शन किया। उनका कहना था कि शरीर और मन दोनोंका स्वस्थ रहना बहुत जरूरी है। शरीर स्वस्थ रहे, मन शान्त रहे, चित्तवृत्ति संतुलित रहे। जैसे-जैसे शरीरकी आयु बढ़े, वैसे-वैसे मनकी एकाग्रता एवं शान्ति बढ़ना जरूरी है। भजन, ध्यान एवं विचारके द्वारा आत्मतत्त्वका चिन्तन करना तथा स्वस्वरूपका अनुसन्धान करना ही निर्विकल्प समाधि है। अहर्निश आत्मामें ब्रह्मस्वरूपका निश्चय रहना चाहिये। आत्मा सर्वत्र है, सर्वरूप है, आत्मासे भिन्न कुछ भी नहीं। शान्त चित्तसे किया गया चिन्तन आनन्दकी ओर जाता है। आनन्दसे प्रेम उपजता है। यही अमृत है। भगवान्‌की अनुकम्पासे जिसको भी यह प्रेमरूपी अमृत मिल जाता है, वह भक्त सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होकर अविनाशीका अंश बन जाता है। '**न सः पुनरोऽभिजायते**' यही ज्ञानयोग और अनन्य भक्ति है। यही परम पुरुषार्थ है। भक्तके हृदयमें भगवान्‌के प्रेमकी नित्यनवीन जिज्ञासाके अतिरिक्त और कोई वासना नहीं रह जाती। अतः संशयको त्यागकर, अटल निश्चयको धारण करो। जब-जब बुद्धिमें भ्रम होता है, तभी प्राणी अपनेको भगवान्‌से भिन्न देखता है। बुद्धिका भ्रम ही भेदकी प्रतीतिका जन्मदाता है। एकान्तमें बैठकर शान्तिका अनुभव करो। आनन्दको आत्मसात् करो। तुम स्वयं आनन्दस्वरूप, परम सुखस्वरूप, अद्वितीय, नित्य, शुद्ध, परिपूर्ण हो।

सत्यादेवीने हिमाचलकी लोकभाषा काँगड़ीमें कृष्ण-लीलापर आधारित अनेक भजनोंकी रचना की है, जिन्हें हिमाचलके संकीर्तनोंमें बड़े मधुर भावसे गाया जाता है। महिला कीर्तन-मण्डलियोंमें ये भजन विशेष

लोकप्रिय हैं, जिनपर महिलाएँ कृष्ण-रंगके आनन्दमें डूबकर नृत्य करती हैं।

लगभग ५०-५२ वर्षोंतक सत्यादेवीने 'सत्संग-गीता-भवन' काँगड़ामें रहकर सनातन धर्मका खूब प्रचार किया। प्रतिवर्ष सनातन तीर्थस्थलों—अयोध्या, काशी, वृन्दावन, हरिद्वार आदिके दर्शनहेतु गीता भवनसे बसें भेजी जाती थीं, ताकि हिमाचलके सुदूर क्षेत्रोंमें रहनेवाले लोग भी तीर्थयात्रा कर सकें।

२४ दिसम्बर २००७ ई० को सत्यादेवीका गोलोक-गमन हुआ। जब इनके शिष्य-परिवारद्वारा हरिद्वारमें गंगातटके किनारे इनकी अन्तिम क्रियाएँ करवाई जा रही थीं तो एक देशी सफेद गाय वहाँ आ पहुँची। शिमलाके उच्च न्यायालयके एडवोकेट नील कमल सूद अपनी धर्मपत्नी श्रीमती विजयलक्ष्मीके साथ अन्तिम क्रियाएँ करवा रहे थे कि गाय श्रीमती विजयलक्ष्मीकी गोदमें सिर रखकर लगभग २ घण्टे लेटी रही और क्रियाएँ खत्म होनेपर एक बार जोरसे रँभाकर चुपचाप वहाँसे चली गयी। शिष्य-परिवारने इसे सत्यादेवीका आशीर्वाद ही समझा।

आज भी काँगड़ा तथा हिमाचलके लोग सत्या देवीका नाम बड़ी श्रद्धा और आदरसे लेते हैं तथा उनके गोलोकगमनदिवसपर आश्रममें मेला लगता है।

बड़भागी हनुमान्‌जी

(साकेतवासी श्रद्धेय स्वामी श्रीराजेश्वरानन्दसरस्वतीजी महाराज 'रामायणी')

श्रीहनुमान्‌जी महाराज रामकथाके विशिष्ट पात्र हैं। वे महान् वीर, ज्ञानकी साक्षात् मूर्ति और दुष्टोंरूपी वनको जलानेके लिये अग्निरूप तो हैं ही; साथ ही वे इतने भाग्यशाली हैं कि स्वयं भगवान् श्रीराम उनके हृदयरूपी भवनमें धनुष-बाण धारणकर निवास करते हैं।

शिवजी पार्वतीजीसे कहते हैं कि 'हनुमान्‌जीके समान न तो कोई बड़भागी है और न कोई उनके जैसा श्रीरामजीके चरणोंका अनुरागी है।'

हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥

(रा०च०मा० ७।५०।७)

पर हनुमान्‌जी क्यों और कैसे बड़भागी हैं? इसको समझाते हैं।

हनुमान्‌जी श्रीरामजी और सीताजीके प्रिय हैं और शिवजीके अवतार हैं।

श्रीरामचरितमानसमें तुलसीदासजीने श्रीरामजीको बार-बार 'प्रभु' कहकर सम्बोधित किया है। जैसे—

बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥

दूसरी तरफ तुलसीदासजीने ही हनुमानाष्टकमें हनुमान्‌जीको 'महाप्रभु' कहा है।

ताहि समय हनुमान महाप्रभु जाय महा रजनीचर मारो।

इसी प्रकार सीताजीने हरणके दौरान अरण्यकाण्डमें श्रीरामजीको वीर कहकर सम्बोधित किया है।

हा जग एक बीर रघुराया।

पर तुलसीदासजीने हनुमान्‌जीको सभी जगह महावीर कहकर सम्बोधित किया है।

महाबीर विक्रम बजरंगी। कुमति निवार सुमति के संगी॥

ऐसा क्यों है? क्योंकि प्रभु श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्‌जीके हृदयमें बसते हैं और हनुमान्‌जीने अपनी भक्तिसे उनको अपना बना लिया है। तुलसीदासजी लिखते हैं कि

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥

और,

जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

मतलब, हनुमान्‌जी सीतारामजीके लिये सदैव विशेष ही हैं; क्योंकि उन्होंने श्रीसीतारामजीको आत्मसात् कर लिया है और जिसने श्रीसीतारामजीको आत्मसात् कर लिया उसके बड़भागी होनेमें क्या सन्देह!

तो हैं न हनुमान्‌जी बड़भागी!

गो-चिन्तन—

महाराज विक्रमादित्यकी गोभक्ति

परदु:खकातर, परमोदार, शकारि विक्रमादित्य प्रजाके कष्टका पता लगानेके लिये प्राय: घूमते ही रहते थे। इसी प्रकार अकेले घोड़ेपर बैठे वे एक बार जा रहे थे। मार्ग वनमेंसे जाता था। संध्या हो चुकी थी। शीघ्र वनसे निकल जानेके विचारसे उन्होंने घोड़ेको एड़ लगायी। इतनेमें एक गायके डकरानेकी ध्वनि सुनायी पड़ी। सम्राट्ने घोड़ेको शब्दकी दिशाकी ओर मोड़ा।

वर्षा ऋतु थी। नदीमें बाढ़ आयी तो नालोंमें भी जल चढ़ आया। बाढ़ उतर चुकी थी; किंतु नालोंमें एकत्र पंकने दलदल बना दिया था। ऐसे ही एक नालेके दलदलमें एक गाय फँस गयी थी। उसकी चारों टाँगें पेटतक कीचड़में डूब चुकी थीं। हिलनेमें भी असमर्थ होकर वह डकरा रही थी।

महाराज विक्रमादित्यने घोड़ेको खुला ही छोड़ दिया, वस्त्र उतार दिये। दलदलमें उतरकर गायको निकालनेका प्रयत्न करने लगे। स्वयं कीचड़में लथपथ हो गये। किंतु अकेले गायको निकाल लेना सम्भव नहीं था। अन्धकारने इस कार्यको और भी कठिन कर दिया।

गायकी डकार सुनकर एक सिंह उसे खाने आ पहुँचा। घोड़ा खुला था, अत: सिंहकी गन्ध मिलते ही भाग गया। अब विक्रमादित्यने तलवार उठायी। गायकी सुबहतक रक्षा करना आवश्यक था। उस अन्धकारमें सिंहसे युद्ध करना भी कठिन था। सिंह आक्रमण कर रहा था और वे उसे रोक रहे थे।

समीप ही एक बड़ा वटका वृक्ष था। उसपरसे एक शुकका शब्द सुनायी पड़ा—'राजन्! गायकी तो मृत्यु आ गयी है। वह अभी नहीं मरेगी तो कलतक दलदलमें डूबकर मर जायगी। आप उसके लिये व्यर्थ क्यों प्राण दे रहे हैं? अभी यह सिंह अकेला है। थोड़ी देरमें सिंहनी तथा दूसरे वनपशु आ सकते हैं। अत: आप यहाँसे शीघ्र ही कहीं सुरक्षित स्थानपर चले जाइये। इस वटवृक्षपर चढ़ जानेसे भी आप सुरक्षित हो सकते हैं।'

महाराजने कहा—'शुक! मेरे प्रति तुम्हारी जो कृपा है, उसके लिये आभार; किंतु मुझे तुम अनीतिका मार्ग मत दिखलाओ।' अपने प्राणोंकी रक्षाका प्रयत्न तो कीट-पतंग भी करते हैं। दूसरोंकी रक्षामें जो प्राण दे सके, उसीका जीवन धन्य है। जिसमें दया नहीं, उसके सब पुण्य कर्म व्यर्थ हैं। मेरे प्रयत्नका कुछ लाभ होगा या नहीं, यह देखना मेरा काम नहीं है। मुझे तो अपनी शक्तिके अनुसार प्रयत्न करते रहना चाहिये। इस गौकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। मैं प्राण देकर भी इसे बचानेका प्रयत्न करूँगा।

पूरी रात सम्राट् विक्रमादित्य गायकी रक्षामें लगे रहे; किंतु सूर्योदयसे पूर्व ही जब झुटपुटा हुआ, उनके सामने सिंह देवराज इन्द्रके रूपमें खड़ा हो गया। शुक बनकर बोलनेवाले धर्म भी अपने रूपमें आ गये और साक्षात् भूदेवी जो गाय बनकर राजाकी परीक्षा लेनेमें सम्मिलित थीं, उन्होंने भी अपने दिव्य रूपके दर्शन दे दिये।

जो उच्छृंखलतावश मांस बेचनेके लिये गौकी हिंसा करते या गोमांस खाते हैं तथा जो स्वार्थवश कसाईको गाय मारनेकी सलाह देते हैं, वे सब महान् पापके भागी होते हैं। गौको मारनेवाले, उसका मांस खानेवाले तथा उसकी हत्याका अनुमोदन करनेवाले पुरुष गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक नरकमें पड़े रहते हैं। [महा०, अनु० ७४। ३-४]

विद्या और शिक्षा

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

विद्या और शिक्षामें बड़ा अन्तर होता है। पण्डित जिस बातको पढ़ाईके द्वारा सीखता है, सन्त उसको अनुभवसे जानता है। सीखी हुई बात स्मृतिके रूपमें होती है। जानी हुई बात जीवन बन जाती है। चित्त शुद्ध होनेपर जो ज्ञान प्राप्त होता है, वही ठीक ज्ञान है। केवल शिक्षाद्वारा प्राप्त जानकारी ज्ञान नहीं है। उससे तो अभिमान बढ़ता है, जो कि साधनामें विघ्न है।

जब इन्द्रियोंका ज्ञान बुद्धिमें विलीन हो जाता है तब चित्त शुद्ध होता है और जब बुद्धिका ज्ञान इन्द्रियोंमें विलीन हो जाता है अर्थात् जब मनुष्य अपनी जानकारीका अनादर करके इन्द्रियोंके ज्ञानको ही ज्ञान मान लेता है और इन्द्रियोंके भोगोंमें ही रचा-पचा रहता है, तब चित्त अशुद्ध हो जाता है। इन्द्रियोंके ज्ञानका प्रभाव बुद्धिपर पड़ता रहनेसे बुद्धि विषम रहती है, उसमें समता नहीं आती। प्रभुका प्रेम तो बुद्धिके ज्ञानसे भी परेकी बात है। जब बुद्धिके ज्ञानमें अहं गल जाता है, तब साधकको आगेका मार्ग मिल जाता है। अतः साधकको चाहिये कि बुद्धिके ज्ञानसे इन्द्रियोंके ज्ञानपर विजय प्राप्त करके बुद्धिको सम बनाये और उसमें अहंको गला दे।

भाषाकी जानकारीमें और वास्तविक ज्ञानमें बड़ा अन्तर है। भाषाके ज्ञानसे जो शिक्षा मिलती है, उससे जीवनकी शिक्षाका महत्त्व अधिक है। भाषाकी शिक्षा न होनेपर भी जीवन शिक्षित बन सकता है। जिसके जीवनमें सदाचार आ गया है, वही सदाचारका सच्चा शिक्षक है। जिसको केवल पुस्तकोंका ज्ञान है, वह आचारकी शिक्षा नहीं दे सकता।

इसी प्रकार आनन्द और सुखमें भी बड़ा अन्तर है। सुखसे आसक्ति बढ़ती है और वह दुःखके रूपमें बदलता है। आनन्द सदा एकरस और अखण्ड होता है। उसका कभी अभाव नहीं होता।

इन्द्रियोंके ज्ञानकी आसक्तिसे वास्तविक ज्ञान ढका रहता है। अतः साधकको चाहिये कि बुद्धिके ज्ञानसे इन्द्रियोंके ज्ञानको दबाकर चित्तको शुद्ध करे।

शिक्षासे जीवनमें सुन्दरता आती है; परंतु उससे अविद्याका नाश नहीं होता। अविद्याका नाश तो विद्यासे ही होगा अर्थात् यथार्थ ज्ञानसे ही होगा। जो साधक सबसे अलग होकर अर्थात् सबका आश्रय त्यागकर मौन हो जाता है, उसको वह विद्या प्राप्त होती है, जिससे अविद्या दूर होती है। जो 'है' (परमात्मा) उसका बोध और जो 'नहीं है' (प्रकृति) उसकी निवृत्ति—इसीका नाम विद्या है।

भीतर और बाहर सब ओरसे मौन होनेका नाम मौन है अर्थात् मन, बुद्धि और अहं—इन सबके मौनको यहाँ मौन कहा गया है। अहंकृतिका नाश और अहंकी स्फूर्तिका मौन होनेपर जो जीवन बनता है, वही अमर जीवन है।

श्रम, संयम, सदाचार और सेवा—ये चारों जीवनको सुन्दर बनानेवाली शिक्षाके अंग हैं एवं त्याग और प्रेम विद्याके अंग हैं।

छोटी-छोटी बातोंमें गलती करनेसे मनुष्यकी आदत बिगड़ जाती है, वह अपने जीवनको सुन्दर नहीं बना पाता।

साधकको चाहिये कि साधनमें शिथिलता न आने दे। आलस्यका आदर और संयमका त्याग करनेसे साधनमें शिथिलता आती है। गुणसे तो मनुष्यका विकास होता है और गुणोंके अभिमानसे पतन होता है।

विद्याके फलका वर्णन नहीं किया जा सकता। त्याग और प्रेमसे संसारका कल्याण होता रहता है। जो सच्चा त्यागी होता है, जिसमें त्यागका अभिमान नहीं होता, उसीसे त्यागकी शिक्षा मिलती है।

जो अपना बुरा नहीं चाहता, उसे दूसरे किसीका बुरा नहीं करना चाहिये; इसी प्रकार हर एक आचरणोंकी शिक्षा अपने जीवनके अध्ययनसे मिल सकती है।

सुभाषित-त्रिवेणी

पण्डितके लक्षण

[The Attributes of A Pandita]

निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः।
अबन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते॥

जो पहले निश्चय करके फिर कार्यका आरम्भ करता है, कार्यके बीचमें नहीं रुकता, समयको व्यर्थ नहीं जाने देता और चित्तको वशमें रखता है, वही पण्डित कहलाता है।

We call him a Pandita who makes up his mind before taking up a project. Thereafter, he works relentlessly, and does not stop mid-way. All through this he exercises total control over his mind.

आर्यकर्मणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते।
हितं च नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ॥

भरतकुल-भूषण! पण्डितजन श्रेष्ठ कर्मोंमें रुचि रखते हैं, उन्नतिके कार्य करते हैं तथा भलाई करनेवालोंमें दोष नहीं निकालते हैं।

O descendent of Bharata! The learned occupy themselves with the most desirable of objectives. They act in pursuit of progress and enrichment [of others]. They do not find a fault with those engaged in good deeds.

न हृष्यत्यात्मसम्माने नावमानेन तप्यते।
गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते॥

जो अपना आदर होनेपर हर्षके मारे फूल नहीं उठता, अनादरसे सन्तप्त नहीं होता तथा गंगाजीके कुण्डके समान जिसके चित्तको क्षोभ नहीं होता, वह पण्डित कहलाता है।

He alone deserves to be called a Pandita who does not feel over-elated when praised. Condemnation does not depress him. His mind is like a large whirlpool in the Ganges, always ebullient.

तत्त्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम्।
उपायज्ञो मनुष्याणां नरः पण्डित उच्यते॥

जो सम्पूर्ण भौतिक पदार्थोंकी असलियतका ज्ञान रखनेवाला, सब कार्योंके करनेका ढंग जाननेवाला तथा मनुष्योंमें सबसे बढ़कर उपायका जानकार है, वही मनुष्य पण्डित कहलाता है।

A Pandita is aware of the reality of life. He is dexterous in all activity. He can unravel any knot among human beings.

प्रवृत्तवाक्चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान्।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते॥

जिसकी वाणी कहीं रुकती नहीं, जो विचित्र ढंगसे बातचीत करता है, तर्कमें निपुण और प्रतिभाशाली है तथा जो ग्रन्थके तात्पर्यको शीघ्र बता सकता है, वही पण्डित कहलाता है।

We know him as a Pandita who is fluent in speech, whose choice of words is unique, who argues well, and is intellectually brilliant. A Pandita can elucidate the essence of a literary work with felicity.

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा।
असम्भिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः॥

जिसकी विद्या बुद्धिका अनुसरण करती है और बुद्धि विद्याका तथा जो शिष्ट पुरुषोंकी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करता, वही 'पण्डित' की पदवी पा सकता है।

He alone is entitled to be called a Pandita whose learning is guided by intellect and whose intellect is moulded by his education. He never transgresses the limits of decency.

[विदुरनीति १। २९—३४]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-शरदृतु, आश्विन-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें २।१५ बजेतक	रवि	पू० भा० दिनमें ९।५५ बजेतक	११ सितम्बर	**महालयारम्भ, प्रतिपदाश्राद्ध।**
द्वितीया ,, १।९ बजेतक	सोम	उ० भा० ,, ९।२७ बजेतक	१२ ,,	**द्वितीयाश्राद्ध, भद्रा** रात्रिमें १२। ४९ बजेसे, **तृतीयाश्राद्ध, मूल** दिनमें ९। २७ बजेसे।
तृतीया ,, १२।३० बजेतक	मंगल	रेवती ,, ९।२५ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। ३० बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८। ६ बजे, **पंचक समाप्त** दिनमें ९। २५ बजे, **चतुर्थीश्राद्ध।**
चतुर्थी ,, १२।२१ बजेतक	बुध	अश्विनी ,, ९।५२ बजेतक	१४ ,,	**पंचमीश्राद्ध, उ०फा० का सूर्य** दिनमें १२। ३२ बजे, **मूल** दिनमें ९।५२ बजेतक।
पंचमी ,, १२।४३ बजेतक	गुरु	भरणी ,, १०।५१ बजेतक	१५ ,,	**वृषराशि** सायं ५। १४ बजे, **षष्ठीश्राद्ध।**
षष्ठी ,, १।३७ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका ,, १२।२३ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** दिनमें १। ३७ बजेसे रात्रिमें २। १६ बजेतक।
सप्तमी ,, २।५६ बजेतक	शनि	रोहिणी ,, २।१४ बजेतक	१७ ,,	**मिथुनराशि** रात्रिमें ३। २२ बजेसे, **सप्तमीश्राद्ध, कन्यासंक्रान्ति** रात्रिमें १०। ४८ बजे, **विश्वकर्मापूजा, शरदृतु प्रारम्भ।**
अष्टमी सायं ४।३९ बजेतक	रवि	मृगशिरा सायं ४।३१ बजेतक	१८ ,,	**जीवत्पुत्रिकाव्रत, अष्टमीश्राद्ध।**
नवमी रात्रिमें ६।३७ बजेतक	सोम	आर्द्रा रात्रिमें ७।२ बजेतक	१९ ,,	**मातृनवमी, नवमीश्राद्ध।**
दशमी ,, ८।४२ बजेतक	मंगल	पुनर्वसु ,, ९।३९ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** प्रातः७। ४० बजेसे रात्रिमें ८। ४२ बजेतक, **दशमीश्राद्ध।**
एकादशी ,, १०।४३ बजेतक	बुध	पुष्य ,, १२।१२ बजेतक	२१ ,,	**इन्दिरा एकादशीव्रत** (सबका), **एकादशीश्राद्ध, मूल** रात्रिमें १२।१२ बजेसे।
द्वादशी ,, १२।२९ बजेतक	गुरु	आश्लेषा ,, २।३१ बजेतक	२२ ,,	**द्वादशीश्राद्ध, सिंहराशि** रात्रिमें २। ३१ बजेसे।
त्रयोदशी ,, १।५६ बजेतक	शुक्र	मघा रात्रिशेष ४।२९ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १।५६ बजेसे, **प्रदोषव्रत, त्रयोदशीश्राद्ध, सायन तुलाराशि का सूर्य** रात्रिमें १०। २ बजे, **मूल** रात्रिशेष ४। २९ बजेतक।
चतुर्दशी ,, २।५४ बजेतक	शनि	पू०फा० ,, ५।५९ बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** दिनमें २। २५ बजेतक, **चतुर्दशीश्राद्ध।**
अमावस्या ,, ३।२३ बजेतक	रवि	उ०फा० अहोरात्र	२५ ,,	**कन्याराशि** दिनमें १२।१६ बजेसे, **अमावस्या, पितृविसर्जन, अमावस्या श्राद्ध, महालया समाप्त।**

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य दक्षिणायन, शरदृतु, आश्विन-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ३।२२ बजेतक	सोम	उ० फा० प्रातः ७।३ बजेतक	२६ सितम्बर	**शारदीय नवरात्रारम्भ, मातामह श्राद्ध, अग्रसेन-जयन्ती।**
द्वितीया ,, २।५० बजेतक	मंगल	हस्त ,, ७।३४ बजेतक	२७ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें ७।३६ बजेसे, **हस्त नक्षत्रका सूर्य** रात्रिमें ३।५९ बजे।
तृतीया ,, १।४९ बजेतक	बुध	चित्रा ,, ७।३७ बजेतक	२८ ,,	× × × × ×
चतुर्थी ,, १२।२४ बजेतक	गुरु	स्वाती ,, ७।११ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें १। ७ बजेसे रात्रिमें १२। २४ बजेतक, **वृश्चिकराशि** रात्रिमें १२। २६ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, १०।३९ बजेतक	शुक्र	विशाखा प्रातः ६।२५ बजेतक	३० ,,	**मूल** रात्रिशेष ५। १७ बजेसे।
षष्ठी ,, ८।३७ बजेतक	शनि	ज्येष्ठा रात्रिमें ३।५५ बजेतक	१ अक्टूबर	**धनुराशि** रात्रिमें ३। ५५ बजेसे।
सप्तमी रात्रिमें ६।२० बजेतक	रवि	मूल ,, २।२१ बजेतक	२ ,,	**मूल** रात्रिमें २।२१ बजेतक, **महानिशा पूजा, महात्मागाँधी-जयन्ती, भद्रा** रात्रिमें ६।२१ बजेसे रात्रिशेष ५।१० बजेतक।
अष्टमी दिनमें ३।५९ बजेतक	सोम	पू० षा० ,, १२।४२ बजेतक	३ ,,	**श्रीदुर्गाष्टमीव्रत, श्रीदुर्गानवमीव्रत।**
नवमी ,, १।३३ बजेतक	मंगल	उ०षा० ,, ११।२ बजेतक	४ ,,	**मकरराशि** प्रातः ६। १८ बजेसे, **विजयादशमी।**
दशमी ,, ११।९ बजेतक	बुध	श्रवण ,, ९।२५ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०। ० बजेसे।
एकादशी ,, ८।५२ बजेतक	गुरु	धनिष्ठा ,, ७।५९ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।५२ बजेतक, **कुम्भराशि** दिनमें ८।४३ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें ८।४३ बजे, **पापांकुशा एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी प्रातः ,, ६।४८ बजेतक	शुक्र	शतभिषा ,, ६।४६ बजेतक	७ ,,	**प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी रात्रिमें ३।२९ बजेतक	शनि	पू०भा० सायं ५।५३ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३। २९ बजेसे, **मीनराशि** दिनमें १२। ६ बजेसे।
पूर्णिमा ,, २।२४ बजेतक	रवि	उ०भा० ,, ५।१७ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** दिनमें २।५७ बजेतक, **शरदपूर्णिमा, महर्षि वाल्मीकिजयन्ती, कार्तिक स्नानारम्भ।**

कृपानुभूति

भगवत्कृपा

बड़ी ही कृतज्ञतासे यह बात कहना चाहता हूँ कि अगर आप भगवान्‌का नाम लेते हैं, तो भगवान् हमेशा आपकी रक्षा करते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं।

बात पिछले सालकी है, जब देशमें कोरोनाकी महामारीका संकट छाया हुआ था और सब जगह लॉकडाउन चल रहा था। हमारे यहाँ कोल्हापुरमें भी अत्यावश्यक सेवाओंको छोड़कर सम्पूर्ण व्यापार बन्द था। हमारी कपड़ेकी दूकान है, इसलिये हमको भी दूकान खोलनेकी अनुमति नहीं दी गयी थी। अतः तीन महीने हम घरपर ही बैठे रहते, घरके काममें हाथ बँटाते और थोड़ी पूजा-पाठ करते थे। उसी दौरान मेरी पत्नीने श्रीरामचरित-मानसका (मासपारायण)-का पाठ करना शुरू किया था।

एक दिन मुझे मेरे फेमिली डॉक्टर साहबका फोन आया कि शौनक! मुझे मेरे मापका कुर्ता-पाजामा चाहिये तो क्या आप दूकान खोलकर मुझे ला देंगे? सो मैंने कहा जरूर डॉक्टर साहब! कल बाहर जाऊँगा तो आपके लिये दूकान खोलकर कुर्ता-पाजामा ले आऊँगा।

दूसरे दिन सुबह घरके लिये कुछ सब्जी लेनेके लिये बाहर निकला और सब सामान लेकर दूकान आया। दूकान खोलकर डॉक्टर साहबके साइजका कुर्ता-पाजामा लिया और दूकान बन्द करके डॉक्टर साहबको कपड़े देनेके बाद घर वापस आ गया। तीन दिन बाद सुबहके ८ बजे मेरे मोबाइलपर मेरे एक ग्राहकका फोन आया कि 'भाईसाहब! मुझे कुछ कपड़े खरीदने हैं। आप दूकानके अन्दर हो क्या?' मैंने कहा—'नहीं श्रीमान्! मैं घरपर हूँ और दूकान तो बन्द है।' उन्होंने कहा, 'दूकानके ताले खुले थे तो मैंने सोचा आप किसी कामसे अन्दर होंगे, इसलिये फोन किया।' यह बात सुनकर मानो मुझे साँप सूँघ गया हो। मैंने पत्नीसे यह बात कही तो वह मुझे धीरज देते हुए बोली—'हमारे रामजी हैं ना, फिर क्यों चिन्ता करते हो।'

मैंने स्कूटर चालू किया और हनुमान्‌जीका स्मरण करते हुए दूकानकी ओर गया। वहाँ पहुँचा तो देखा कि दूकानका शटर नीचे था, पर ताले सब खुले थे। फिर याद आया कि तीन दिन पहले जब दूकानमें कपड़े लेने आया था, तो हड़बड़ीमें सिर्फ शटर नीचे करके ताला लगाना मैं ही भूल गया था।

दूकान खोलनेकी हिम्मत नहीं हो रही थी, फिर भी श्रीरामजीका नाम लेकर जैसे ही मैंने शटर ऊपर किया तो अचम्भित हो गया, दूकानमें एक भी चीज इधर-की-उधर नहीं हुई थी। हम कैश बॉक्सको लॉक नहीं लगाते, उसे खोलकर देखा तो एक भी रुपया नहीं गया था। यह देख मेरी आँखोंमें आँसू आ गये और प्रभुसे कहने लगा, 'आपका लाख-लाख धन्यवाद है।' आजके जमानेमें जहाँ चोर बन्द दूकानोंमें भी शटर तोड़कर चोरी कर लेते हैं, वहाँ आपने इतने दिनतक मेरी दूकानकी रक्षा की और मुझपर आँच भी नहीं आने दी।

घर आकर मैंने पत्नीसे यह बात कही तो उसने मुझसे यही कहा—'यह सब चमत्कार श्रीराम-चरितमानसका है' और एक भजनकी पंक्तियाँ सुनायीं, जो इस प्रकार हैं—

हमारे साथ श्री रघुनाथ तो किस बात की चिन्ता।
शरण में रख दिया जब माथ, तो किस बात की चिन्ता?
किया करते हो तुम दिन रात क्यों बिन बात की चिन्ता?
तेरे स्वामी को रहती है तेरे हर बात की चिन्ता॥

—शौनक सामाणी

पढ़ो, समझो और करो

(१)

अर्थशुचिताका अनुकरणीय उदाहरण

राँचीके एक पोस्टमास्टर श्रीचौधरी कुछ वर्ष पूर्व प्रधान डाकघरमें प्रधान लेखालिपिक थे। स्टेट बैंकसे १०००० (दस हजार) रुपया मँगवाया गया। किंतु वहाँके खजांचीने चेकपर १००००० (एक लाख) रुपया समझकर उतनी राशि दे दी। संध्याको रोकड़ मिलाते समय श्रीचौधरीने प्रधान डाकघरके डाकपालको बताया कि मेरी नगदी रोकड़में नब्बे हजार रुपया अधिक है। डाकपाल श्रीमुखर्जीने इसपर विश्वास नहीं किया। श्रीचौधरी अपने रोकड़में ९० हजार अधिक दिखाकर हस्ताक्षर करके घर चले गये। आधी रातको श्रीमुखर्जीने हिन्दपीढ़ी स्थित श्रीचौधरीके घर पहुँचकर उन्हें जगाकर कहा कि 'नब्बे हजार वास्तवमें अधिक आ गया है। आओ, हम दोनों मिलकर आधा-आधा बाँट लें।' श्रीचौधरीने प्रात:काल बात करनेका बहानाकर उस बातचीतको टाल दिया और दूसरे दिन दफ्तर पहुँचनेसे पहले ही स्टेट बैंक फोन कर दिया कि उनके यहाँसे भूलसे नब्बे हजार रु० अधिक आ गया है। स्टेट बैंकवाले पहलेसे ही चिंतित थे। उन्होंने कहा कि उन्होंने पाँच-छ: बार डाकपालको फोनकर पूछा था और हर बार यही उत्तर दिया गया कि उनके पास एक पाई भी अधिक नहीं आयी। इसपर श्रीचौधरीने कहा कि लेखापाल मैं हूँ, वे नहीं। अत: जो मैं कहता हूँ वही ठीक है। आपके नब्बे हजार रुपये जो भूलसे अधिक आ गये हैं, वापस ले जायँ। जीपसे स्टेट बैंकके अफसरोंके आनेपर उन्हें नब्बे हजार लौटा दिया गया। इसे अपनी झूठी प्रतिष्ठा क्षति मानकर श्रीमुखर्जीने श्रीचौधरीपर अनुशासनहीनताके झूठे आरोप लगाकर उन्हें निलम्बित करवा दिया। श्रीचौधरीने पटनास्थित राज्यके सबसे बड़े अधिकारीको पत्र लिखकर राँची बुलवाया और सारी स्थिति साफ-साफ बतायी। इससे श्रीमुखर्जीको डाक विभागसे तुरंत कार्यमुक्त कर दिया गया। श्रीचौधरीको ३० हजार रु० पुरस्कार देनेका प्रयास किया गया, जो उन्होंने अस्वीकार कर दिया और अन्तमें डाक-तार विभागकी पत्रिकामें उनका चित्र एवं विवरण ससम्मान छपा। अर्थशुचिता एक महान् सद्‌गुण है, जिसके बिना व्यक्ति बेईमान हो जाता है। परिवारोंमें कलह प्रारम्भ हो जाती है। संस्थाएँ उजड़ जाती हैं और बड़े-बड़े राज्यों एवं साम्राज्योंके भवन खोखले होकर धराशायी हो जाते हैं।—**हरबंशलाल ओबराय**

(२)

चमत्कार नहीं, संतकृपा ही श्रेयस्कर

घटना मुझसे व्यक्तिगत रूपसे सम्बन्धित है, जो सन् १९८६ से अक्टूबर १९८९ के कालखण्डकी है। इस अवधिमें मेरी नियुक्ति दूसरी बार पुलिस अधीक्षक जनपद प्रभारीके पदपर देवरियामें हुई थी। इस कालखण्डमें अपने पूज्य गुरुदेव सन्त श्रीदेवराहा बाबाके आश्रम जानेका अवसर हम पति-पत्नी महीनेमें कम-से-कम चार-पाँच बार निकाल लेते थे। इसी कालखण्डमें कसियामें एक चमत्कारी तांत्रिकका आना हुआ। उसके चमत्कार अविश्वसनीय थे। वह जहाँ चाहता, वहीं फल-फूल, मिठाईके साथ लाखों रुपयोंके नोटतक मँगा देता था। मुझसे सम्पर्कके कुछ दिनों बाद ही वह मेरे परिवारके सदस्यके समान हो गया था। उसके चमत्कारोंका प्रत्यक्ष दर्शन करनेके लिये जनपदके जिलाधिकारी, जिलान्यायाधीश, मुख्य चिकित्साधिकारीतक सपरिवार मेरे यहाँ आने लगे थे। वह स्वयंको माँ दुर्गाका भक्त बताया करता था। मेरे अनुरोधपर वह अपनी कुछ सिद्धियोंको मुझको देनेको तैयार भी हो गया था। यद्यपि उसके बहकावेमें आ उसका शिष्य बननेसे मैं बार-बार बचा रहा, वह भी परम पूज्य गुरुदेव देवराहा बाबाकी मुझपर असीम कृपाके कारण।

एक दिन गुरुदेवकी प्रेरणासे मैं प्रात: लगभग ९ बजे ही सपत्नीक गुरुदेवके आश्रम जा पहुँचा। हमें देखते ही श्रद्धेय गुरुदेवने मेरी पत्नीको सम्बोधित करते हुए कहा—'माई! मेरा अजीत बच्चा आजकल एक मदारीके चक्करमें पड़ गया है?' पत्नी अबतक मुझको देख ही रही थी कि

बाबाने हँसते हुए पुनः कहा—'अब तुम घबरा मत माई! मेरा बच्चा सामने आया है। अब सब ठीक हो जायगा।'

उसके बाद बाबाने तांत्रिकका उल्लेख करते हुए कहा कि 'वह मदारी अपनेको माता दुर्गाका साधक होनेकी बकवास करता है। जिस आदिशक्ति माताके समक्ष सृष्टिके सारे देवतागण, ऋषि-महर्षि उसकी कृपाका अंशमात्र पानेको नतमस्तक रहते हैं। वह पापी उनको वशमें कर लेनेका दम्भ भरता है। उसको मेरे सामने लाओ और वह मिठाईका छोटा-सा टुकड़ातक मँगाकर दिखा दे? उसको भूत-पिशाचकी अधम सिद्धि है। जिसके बलपर चमत्कार प्रदर्शितकर वह लोगोंको मूर्ख बनाता है। यदि उसमें इतना ही सामर्थ्य है तो क्यों नहीं रातों-रात किसी नदीपर पुल बना भूखे-प्यासे लोगोंके लिये भारी मात्रामें खाने-पीनेकी व्यवस्थाकर लोगोंको जीवनदान देता? मैं देख रहा हूँ उस मदारीका बहुत-ही दुःखद अन्त होगा। मैं फिर कहता हूँ कि तुम उसको मेरे पास ले आओ और रुपया-पैसाकी तो बात ही दूसरी है, एक फल या मिठाईका टुकड़ा ही मँगाकर दिखलाओ।'

गुरुदेवकी प्रेमपूर्ण फटकारसे मैं रो पड़ा तथा अपनी भूलके लिये बारम्बार क्षमा-याचना करने लगा। परम कृपालु बाबा ठठाकर हँस पड़े और मुझसे पूछ बैठे—'तुमने किसी इंसानके पेशाबसे चिराग जलनेकी बात सुनी है?' मैंने कहा—'बाबा! यह तो एक मुहावरेका अंशभर है।' 'यदि यह मुहावरा तुमपर सत्य सिद्ध हो जाय तो?' बाबाका कथन सुन मैं चौक उठा था। 'सुनो अजित बच्चा! चमत्कारका प्रदर्शन योगियों और सिद्धोंके लिये वर्जित है, किंतु उस मदारीके भ्रमजालसे तुमको निकालनेके लिये यह आवश्यक है कि तुम स्वयं ही किसी चमत्कारके साक्षी बनो।'

यह कहकर गुरुदेवने मुझको निकट बुलाकर मेरे सिरपर अपना पाँव रख दिया। सहसा मुझको एक झटका-सा लगा और फिर स्थिति सामान्य हो गयी। बाबाने आश्रम-परिसरमें ही एक कोनेमें रखे मिट्टीके कुल्हड़ोंके ढेरसे एक कुल्हड़ उठा लेनेको कहा तथा आदेश दिया कि वापस लौटते समय मार्गमें किसी सुरक्षित एकान्त स्थानपर गाड़ी रोकवाकर इसी कुल्हड़में पेशाबकर दूरसे जलती माचिसकी तीली उस कुल्हड़में फेंकना। सावधान! बहुत निकट मत जाना। तुम और माई अपने चालक और सुरक्षाकर्मीको भी थोड़ी दूर खड़ा कर सकते हो। फिर देखना पेशाबसे आगकी कितनी तेज लपटें निकलती हैं।'

वापसीमें मुझको ही नहीं वरन् मेरी धर्मपत्नी, मेरे गनर एवं मेरे चालक सभीके मनमें परीक्षणकी तीव्र उत्कण्ठा थी। न जाने क्यों और कैसे मूत्रत्यागकी इच्छा भी बलवती हो उठी थी। वापसीमें मैंने सलेमपुर-बरहज रेलमार्गको पार करते ही आमके बागके किनारे अपनी कार रोकवा दी। सभी लोग कारसे उतर पड़े। सुनसान स्थानपर हमलोगोंके अतिरिक्त कोई नहीं था। थोड़ा अलग हटकर मैंने कुल्हड़में मूत्रत्याग किया और गनरसे माचिस माँगी। तीनों लोग कुल्हड़से थोड़ी दूरीपर खड़े हो गये। डरते-डरते कुल्हड़के निकट जाकर जलती माचिसकी तीली उसमें फेंक मैं पीछे हट गया। यह क्या जलती तिल्लीके कुल्हड़में पड़ते ही सहसा आगकी तीव्र लपट निकली। धड़ामकी ध्वनि करता कुल्हड़ कई टुकड़ोंमें विभक्त हो गया। आस-पासके आमके सूखे पत्ते जल उठे। आश्चर्यचकित हम सभी बाबाका मार्गभर गुणगान करते वापस लौटे।

दूसरे दिन मैंने मध्याह्नमें थानाध्यक्ष कसियाको फोनकर उस तान्त्रिकको अपने राजकीय आवासपर बुलवाया। मेरे तथा धर्मपत्नीके बारम्बार अनुरोधपर भी जब तांत्रिक महाराज बाबाके आश्रम जानेको सहमत नहीं हुए, तो मेरे बार-बार दबाव देनेपर वे अन्ततः यह रहस्य खोलनेको सहमत हुए कि उन्होंने प्रेत एवं जिन्नातको सिद्ध कर रखा है, जो परम वैष्णव सिद्ध सन्त बाबाके मेरे निकट पहुँचते ही मुझको छोड़कर पलायन कर जायँगे और मेरा अहित कर बैठेंगे।

पूज्य देवराहा बाबाने कहा था कि उस मदारीके पास अधम सिद्धियाँ हैं और वह उन्हींका प्रयोग करता है, उसका अन्त बड़ा ही दुःखद होगा, कहनेकी आवश्यकता नहीं कि बाबाका कथन सत्य हुआ और

उसकी बड़ी ही दु:खद एवं कष्टमय मृत्यु हुई। श्रीभगवान्ने गीतामें कहा है—

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥

प्रसिद्ध है कि 'जैसा इष्ट वैसी गति' देवोंको पूजने-वाले देवगतिको, यक्ष-राक्षसोंको पूजनेवाले यक्ष-राक्षसोंकी गतिको और भूत-प्रेतोंको पूजनेवाले उन्हींके जैसे रूप, गुण और स्थिति आदिको पाते हैं।—**डॉ० अजितकुमार सिंह**

(३)

बिल्लीका प्रायश्चित्त

पश्चिम बंगालमें बर्दवान (पश्चिम) जिलेमें रानीगंज एक बहुत पुराना भारतीय धर्म और संस्कृतिसे जुड़ा तथा औद्योगिक और व्यवसायिक उन्नतिके साथ कदम-से-कदम बढ़ानेवाला जागरूक शहर रहा है। महात्मा गाँधी रोड और जवाहरलाल नेहरू रोड यहाँके व्यस्ततम व्यावसायिक केन्द्र हैं। इनको मिलानेवाली हनुमान गलीमें लगभग १५० वर्षोंसे प्रख्यात जाग्रत् हनुमान मन्दिर है। शनिवार और मंगलवारको तो सुबहसे ही हनुमान-चालीसा और सुन्दरकाण्डका पाठ करने और प्रसाद चढ़ानेवालोंका ताँता लगा रहता है।

जून २००० ई०की बात है। मैं गम्भीर रूपसे अस्वस्थ हो गया था। चिकित्साके लिये रानीगंजसे बाहर जानेके पहले मैंने हनुमानजीके मन्दिरमें खड़े होकर व्रत लिया था कि बाहरसे आनेके बाद मैं प्रतिदिन प्रात: ४ बजे मन्दिरमें बैठकर लगभग एक घण्टेतक हनुमान-चालीसा, विष्णुसहस्रनाम आदि ग्रन्थोंका पाठ करूँगा।

१० जून २००७ से प्रात: ४ बजे मैं हनुमान्जीके दरबारमें एक खम्भेकी बगलमें उनकी शरणमें आसन लगाकर बैठ गया और पाठ शुरू करनेकी तैयारी करने लगा। उसी समय एक बिल्ली आकर मुझसे एक हाथ दूरीपर मेरी बगलमें बैठ गयी और दत्त-चित्त होकर पाठ सुनने लगी। जरा भी टस-से-मस नहीं हुई। पाठ समाप्त होनेके पश्चात् पुजारीजी एक कटोरीमें दूध लाकर उसे पिला देते। यह क्रम १९ दिनोंतक निर्विघ्न चलता रहा। २०वें दिन संयोगसे उसी समय रानीगंजके बहुत प्रतिष्ठित सामाजिक नेता श्री गोविन्दराम खेतान अकस्मात् मन्दिर पहुँच गये। यह दृश्य देखकर वे अवाक् रह गये। उन्होंने पुजारीजीसे पूछा—'पुजारीजी! यह क्या तमाशा है! विश्वनाथ पाठ कर रहा है और बिल्ली ध्यान लगाकर सुन रही है। इसमें अवश्य कोई रहस्य है। इसकी पूरी छान-बीन होनी चाहिये। शोध होना चाहिये।' वे अपनी धुनमें बोलकर चले गये। हमलोग सब मुसकराकर रह गये।

२०वें दिन मैं अपने नियमित कार्यक्रमके अनुसार प्रात: ४ बजे वहीं मन्दिरमें आसन बिछाकर बैठ गया। ४-५ मिनट ध्यान लगाकर बैठा रहा। परंतु जो बिल्ली बिना नागा किये २० दिनोंतक लगातार आकर पाठ सुनती रही, वह आज दिखी नहीं। मैंने पुजारीजीसे जिज्ञासा की। उनके यह कहनेपर कि कल शाम बिल्लीकी मौत हो गयी। मृत्यु किसी दुर्घटनामें नहीं हुई थी बल्कि स्वाभाविक ढंगसे ही हुई थी, परंतु थी यह एक आकस्मिक घटना। इसने मुझे अन्दरतक झकझोर दिया। मुझे जैसे धक्का-सा लगा और उस सात्त्विक प्राणीके लिये मेरी आँखें नम हो गयीं। मैं गम्भीर चिन्तनमें पड़ गया। क्या गोविन्दरामजीकी बात सही है। या फिर बिल्ली किसी प्रायश्चित्तके अन्तर्गत इस कार्यक्रममें सम्मिलित थी। हो सकता है कि ८४ लाख योनियोंमें भटकावका चक्र कुछ ऐसे ही चलता हो। किंकर्तव्यविमूढ़की स्थितिमें हो जानेके कारण मेरे मस्तिष्कमें उठते-बैठते यही प्रश्न गूँजता था कि उस बिल्लीकी अचानक मृत्यु क्यों हुई? अन्तमें उसका यही निष्कर्ष निकलता है कि पूर्वजन्ममें वह कोई पुण्यात्मा थी, कोई छोटा-सा प्रारब्ध शेष रह जानेके कारण उसे यह योनि मिली और पूर्वजन्मके संस्कारवश वह इस समय भी सात्त्विक बनी रही और बीस दिनतक लगातार पाठ सुननेपर उसका प्रारब्ध पूरा हो गया और उसे सद्गति प्राप्त हो गयी।—**विश्वनाथ सराफ**

मनन करने योग्य

पितर श्राद्ध ग्रहण करते हैं

पद्मपुराणमें आया है कि प्राचीन कालमें भगवान् श्रीराम जब भगवती सीता तथा लक्ष्मणके साथ चित्रकूटसे चलकर महर्षि अत्रिके आश्रमपर पहुँचे, तब उन्होंने मुनिश्रेष्ठ अत्रिसे पूछा—'महामुने! इस पृथ्वीपर कौन-कौनसे पुण्यमय तीर्थ हैं, जहाँ जाकर मनुष्यको अपने बन्धुओंके वियोगका दुःख नहीं उठाना पड़ता? और वहाँका श्राद्धादि कर्म पितरोंकी सद्‌गतिमें हेतु बनता है। भगवन्! यदि कोई ऐसा स्थान हो तो कृपा करके वह मुझे बताइये।'

मुनिवर अत्रि बोले—वत्स राम! आपने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है, मेरे पिता ब्रह्माजीद्वारा निर्मित एक उत्तम तीर्थ है, जो पुष्करके नामसे विख्यात है, वहाँ जाकर आप अपने पितरों—दशरथ आदिको श्राद्धादि पिण्डदानसे तृप्त करें, वहाँ पिण्डदान करनेसे पितरोंकी मुक्ति हो जाती है।

यह सुनकर रामजी बड़े प्रसन्न हुए, उन्होंने पुष्कर जानेका मन बनाया। वे ऋक्षवान् पर्वत, विदिशा नगरी तथा चर्मण्वतीको पारकर यज्ञपर्वत गये। वहाँसे मध्यम पुष्कर गये। वहाँ स्नान करके उन्होंने देवताओं तथा पितरोंका तर्पण किया। उसी समय मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी अपने शिष्योंके साथ वहाँ आये। भगवान्ने महामुनिको प्रणाम किया और कहा—मुने! मैं महर्षि अत्रिकी आज्ञासे यहाँ अवियोगा तीर्थमें पितरोंका श्राद्ध करने उपस्थित हुआ हूँ। मार्कण्डेयजीने कहा—रघुनन्दन! आप बड़ा ही पुण्यकार्य करने जा रहे हैं। आप यहाँ राजा दशरथका श्राद्ध कीजिये। हम सभी विप्रगण श्राद्धमें उपस्थित रहेंगे। श्रीरघुनाथजीसे ऐसा कहकर वे सभी ऋषि स्नानके लिये चले गये। इधर श्रीरामजीने लक्ष्मणजीको श्राद्धकी सामग्री एकत्रित करनेके लिये कहा। श्रीलक्ष्मणजी जंगलसे अच्छे-अच्छे फलोंको ले आये। श्रीजानकीजीने भोजन बनाया। श्रीरामजी अवियोगा नामकी बावलीमें स्नानकर मुनियोंके आनेकी प्रतीक्षा करने लगे।

दुपहरीमें जब कुतप वेला (दिनमें११:३६ से १२:२४ तकका समय) आयी, उसी समय ऋषिगण उपस्थित हो गये। मुनियोंको आया देख सीतामाता वहाँसे हट गयीं और झाड़ियोंके पीछे हो गयीं। श्रीरामचन्द्रजी विधिपूर्वक श्राद्धमें ब्राह्मणोंको भोजन कराने लगे। श्राद्धकी प्रक्रिया पूर्ण करके ब्राह्मणोंके विसर्जनके अनन्तर श्रीरामजीने देवी सीतासे पूछा—'प्रिये! यहाँ आये मुनियोंको देखकर तुम छिप क्यों गयी?'

सीताजी बोलीं—नाथ! मैंने जो आश्चर्य देखा, उसे बताती हूँ, सुनिये। आपके द्वारा नाम-गोत्रका उच्चारण होते ही स्वर्गीय महाराज यहाँ आकर उपस्थित हो गये। उनके साथ उन्हींके समान रूप-रेखावाले दो पुरुष और आये थे, जो सब प्रकारके आभूषण धारण किये हुए थे। वे तीनों ही ब्राह्मणोंके शरीरसे सटे हुए थे। प्रभो! ब्राह्मणोंके अंगोंमें मुझे पितरोंके दर्शन हुए। उन्हें देखकर मैं लज्जाके मारे आपके पाससे हट गयी। इसीलिये आपने अकेले ही ब्राह्मणोंको भोजन कराया और विधिपूर्वक श्राद्धकी क्रिया भी सम्पन्न की। भला! मैं स्वर्गीय महाराजके सामने कैसे खड़ी होती! यह मैंने आपसे सच्ची बात बतायी है। यह सुनकर श्रीरामजी तथा लक्ष्मणजीको बड़ी प्रसन्नता हुई।

गीताप्रेसके कुछ विशिष्ट प्रकाशन

मानस-पीयूष (कोड 86) सात खण्डोंमें—इसमें महात्मा श्रीअञ्जनीनन्दनशरणजीके द्वारा सम्पादित श्रीरामचरितमानसकी सबसे बृहत् टीका, ख्यातिलब्ध रामायणियों, उत्कृष्ट विचारकों, तपोनिष्ठ महात्माओं एवं आधुनिक मानसविज्ञोंकी एक साथ व्याख्याओंका अनुपम संग्रह किया गया है। सम्पूर्ण सेटका मूल्य ₹ 2800 एवं प्रत्येक खण्डका मूल्य ₹ 400

महाभारत—सटीक (कोड 728) छः खण्डोंमें—यह भारतीय संस्कृति और आर्य सनातन धर्म-दर्शनका विश्वकोष, उपनिषदोंके सार, इतिहास, पुराणोंके उन्मेष-निमेष, आश्रम, वर्ण-धर्म, पुराणोंका आशय, भक्ति-तत्त्वज्ञानका प्रकाशक तथा भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रका विश्लेषण करनेवाला अद्भुत ग्रन्थरत्न है। सम्पूर्ण सेटका मूल्य ₹ 2700 एवं प्रत्येक खण्डका मूल्य ₹ 450, **(कोड 2141 से 2147) तेलुगु भाषामें भी सात खण्डोंमें** उपलब्ध। सम्पूर्ण सेटका मूल्य ₹ 2800 एवं प्रत्येक खण्डका मूल्य ₹ 400

श्रीमद्भागवतमहापुराणम् (कोड 2156 से 2160) पाँच खण्डोंमें—प्रस्तुत ग्रन्थमें महर्षि वेदव्यास प्रणीत श्रीमद्भागवतमहापुराणका मूल संस्कृत और इसपर प्रसिद्ध श्रीधरीटीका संस्कृतमें और श्रीधरीटीकाका अनुवाद गुजराती भाषामें किया गया है। पहली बार गुजराती भाषामें श्रीधरीटीकाका सुन्दर, सुबोध, सरल एवं सरस अनुवाद प्रकाशित किया गया है। सम्पूर्ण सेटका मूल्य ₹ 1750 एवं प्रत्येक खण्डका मूल्य ₹ 350

नवीन प्रकाशन—अब उपलब्ध

श्रीमद्भगवद्गीता [सानुवाद श्रीधरस्वामिकृत व्याख्यासहित] (कोड 2297)—प्रस्तुत पुस्तकमें स्वामी श्रीधराचार्यद्वारा रचित भाष्यको सानुवाद प्रकाशित किया गया है। अन्यान्य सुविस्तृत भाष्योंके होते हुए भी श्रीधरी टीकाकी अपनी एक मुख्य विशेषता है। इसमें सरल भाषाद्वारा संक्षेपमें गीताके मर्मको खोलनेकी सफल चेष्टा की गयी है। मूल्य ₹ 100

गीता-तत्त्व-विवेचनी (कोड 2298) [असमिया]—प्रस्तुत पुस्तक परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा प्रणीत गीताकी एक दिव्य टीका है। इसमें 2515 प्रश्न और उनके उत्तरके रूपमें प्रश्नोत्तर शैलीमें गीताके श्लोकोंकी विस्तृत व्याख्या की गयी है। मूल्य ₹ 200

व्यवहार-दर्शन-पीयूष (कोड 2299)—प्रस्तुत पुस्तकमें श्रद्धेय ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वर चैतन्यजी महाराजके द्वारा समय-समयपर दिये गये पावन उपदेशोंका संकलन किया गया है। इसमें मायामय संसारके नानाविध जंजालोंमें उलझकर अथवा अपनी विभिन्न एषणाओंके कारण प्रपंचोंमें फँसकर अपने मुख्य लक्ष्यसे भटके हुए मनुष्योंको सही जीवन जीनेकी कलाका बहुत ही सुन्दर, सरस विवेचन किया गया है। मूल्य ₹ 20

अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश (कोड 2300) [नेपाली] ग्रन्थाकार—प्रस्तुत पुस्तकमें मूल ग्रन्थों तथा निबन्ध-ग्रन्थोंको आधार बनाकर श्राद्ध-सम्बन्धी सभी कृत्योंका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। ₹ 160

काशी-दर्शन (कोड 2301)—इस पुस्तकमें काशीका सचित्र इतिहास, भौगोलिक स्थिति, पौराणिक आख्यान, सांस्कृतिक विवरण, पर्वोत्सव, यातायात एवं ठहरनेके स्थान इत्यादिका सारगर्भित परिचय तथा स्तोत्र एवं स्तुतियोंका संकलन किया गया है। प्रेमी पाठकों, विद्वानों, पर्यटकों एवं तीर्थयात्रियोंके लिये यह पुस्तक विशेष उपयोगी है। मूल्य ₹ 50

प्र० ति० 20-08-2022
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2020-2022
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2020-2022

श्रीमद्भागवतमहापुराण—अब उपलब्ध
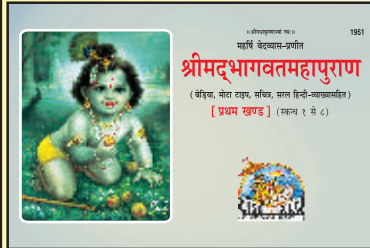
श्रीमद्भागवतमहापुराण—बेड़िया, सटीक, सजिल्द, मोटा टाइप— श्रीमद्भागवत-महापुराण सटीकको पत्राकारकी तरह बेड़िया ग्रन्थाकार, मोटा टाइपमें प्रकाशित किया गया है, जिससे भागवतका पाठ करनेवालोंको सुविधा होगी एवं व्यास-पीठपर भी इसको प्रतिस्थापित किया जा सकता है। (**कोड 1951-1952**) दो खण्डोंमें सेट। दोनों खण्डोंका मूल्य ₹ 1200, डाकखर्च ₹ 180 अतिरिक्त।

गीता-दैनन्दिनी—गीता-प्रचारका एक साधन

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)
व्यापारिक संस्थान दीपावली/नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रचारमें सहयोग दे सकते हैं।

गीता-दैनन्दिनी (सन् 2023) अब उपलब्ध—मँगवानेमें शीघ्रता करें।

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 2278)— दैनिक पाठके लिये गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद मूल्य ₹ 125

पॉकेट साइज— **सजिल्द (कोड 2279)—** गीता-मूल श्लोक मूल्य ₹ 50

आवश्यक सूचना

1. **आजकल ई-कामर्स कम्पनियोंके प्लेटफार्मपर गीताप्रेसकी पुस्तकें बहुत अधिक मूल्यपर, यहाँतक कि छपे मूल्यसे कई गुना अधिक मूल्यपर उपलब्ध हैं। अत: Online गीताप्रेसकी पुस्तकें गीताप्रेसकी अधिकृत website से ही मँगवानी चाहिये।**
   अधिकृत Website:gitapress.org / gitapressbookshop.in
2. **गीताभवन, स्वर्गाश्रममें शारदीय-नवरात्रमें 26 सितम्बरसे 4 अक्टूबरतक श्रीरामचरितमानसका नवाह्न पाठ आयोजित है।**
3. **गीताभवन, स्वर्गाश्रममें Online रुपये जमा करके कमरोंको बुक करानेकी सुविधा नहीं है। कृपया सावधान रहें। कमरा बुक करानेके लिये Online रुपये किसी खातेमें न भेजें।**

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर—273005
book.gitapress.org / gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)